आवश्यक सूचना

कल्याणके पिछले अंक (मार्च २०२० ई०)-में गीता-भवन स्वर्गाश्रमके ग्रीष्मकालीन सत्संगकी सूचना प्रकाशित हुई थी। इधर अकस्मात् कोरोना वायरसके तीव्र प्रकोपके कारण विश्वव्यापी दैवीय आपदाकी चिन्तनीय स्थिति उत्पन्न हो गयी है।

नवीन परिस्थितियोंके कारण चैत्र नवरात्रमें प्रस्तावित श्रीरामचरितमानसके सामूहिक नवाह्न

पाठका कार्यक्रम स्थिगित कर दिया गया था तथा यह व्यवस्था निश्चित की गयी थी कि सभी

अपने-अपने कक्षमें बैठकर पाठ आदि करें।

वर्तमान परिस्थितियोंके अनुसार गीताभवनमें सत्संगका कार्यक्रम फिलहाल स्थगित कर दिया गया है। अत: सत्संग प्रारम्भ होनेकी आगामी सूचनातक गीताभवन आनेका कष्ट नहीं करना चाहिये।

सभीसे निवेदन है कि जागरूक रहकर सरकारद्वारा जारी दिशा-निर्देशोंका सावधानीसे पालन करें तथा अपने घरमें रहकर समयका सदुपयोग साधन-भजन एवं स्वाध्याय आदि करते हुए करें।

व्यवस्थापक—गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४



कल्याणा

मूल्य १० रुपये





भगवती सरस्वती

🕉 पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा। दुष्टान्तदुष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भूवनं सितरशिमनेव॥

वर्ष ९४ गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, अप्रैल २०२० ई० प

्रं) ४ पूर्ण संख्या ११२१

संख्य

भगवती सरस्वतीका ध्यान ——

आरूढा श्वेतहंसे भ्रमित च गगने दक्षिणे चाक्षसूत्रं वामे हस्ते च दिव्याम्बरकनकमयं पुस्तकं ज्ञानगम्या। सा वीणां वादयन्ती स्वकरकरजपैः शास्त्रविज्ञानशब्दैः क्रीडन्ती दिव्यरूपा करकमलधरा भारती सुप्रसन्ना॥ श्वेतपद्मासना देवी श्वेतगन्धानुलेपना। अर्घिता मुनिभिः सर्वैर्ऋषिभिः स्तूयते सदा॥

एवं ध्यात्वा सदा देवीं वाञ्छितं लभते नरः॥

जो श्वेत हंसपर सवार होकर आकाशमें विचरण करती हैं, जिनके दाहिने हाथमें अक्षमाला और बायें हाथमें दिव्य स्वर्णमय वस्त्रसे आवेष्टित पुस्तक शोभित है, जो ज्ञानगम्या हैं, जो वीणा बजाती हुई और अपने हाथकी करमालासे शास्त्रोक्त बीजमन्त्रोंका जप करती हुई क्रीडारत हैं, जिनका दिव्य रूप है तथा जो हाथमें कमल धारण करती हैं, वे सरस्वती देवी मुझपर प्रसन्न हों।

जो भगवती श्वेत कमलपर आसीन हैं, जिनके शरीरमें श्वेत चन्दनका अनुलेप है, मुनिगण जिनकी अर्चना करते हैं तथा सभी ऋषि सदा जिनका स्तवन करते हैं—इस प्रकार सदा देवीका ध्यान करके मनुष्य मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, अप्रैल २०२० ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या विषय विषय पष्ठ-संख्या १- भगवती सरस्वतीका ध्यान ३ १३- ईश्वरका बोधक शब्द 'प्रणव' (डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन', पी-एच०डी० २– कल्याण...... ५ ३- यज्ञीय संस्कृति [आवरणचित्र-परिचय].....६ (आयुर्वेद), डिप्लोमा इन योग)......२५ ४- भगवत्प्राप्तिकी साधनामें आत्मनिवेदनकी भूमिका १४- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)७ श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)...... २७ ५- सुखका उपाय १५- प्रेममें प्रसन्नता (पं० श्रीचन्द्रभालजी ओझा) २८ (श्रद्धेय सन्त श्रीमोटाजी, नाडियाद-गुजरातवाले)१० १६- यह सच्चा या वह सच्चा? (श्रीलालजी) ३१ ६ - तीर्थसेवन कैसे करें ? १७- सिद्ध शक्तिपीठ देवीपाटन (श्रीचरणजीतजी 'चन्द्रेश') ३३ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) १२ १८- आबाल ब्रह्मचारी बालागुरु षडानन्दजी महाराज ७- विनय-प्रार्थना [कविता] [संत-चरित] (पं० श्रीशिवप्रसादजी शर्मा)............ ३६ १९- शंख और घंटा-ध्वनिसे रोगोंका नाश (श्रीयमुनाप्रसादजी)....३९ (डॉ॰ श्रीसतीशजी चतुर्वेदी 'शाकुन्तल')१४ २०- प्रभुमें विश्वास कैसे बढे ? ८- नाम-स्मरण (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)....... १५ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)४० ९- छ: महीनेमें ब्रह्मप्राप्तिके साधन......१६ २१- गायके चरनेमें रुकावट डालनेके कारण नरक-दर्शन.......४१ १०- शरीर और संसारको अस्थिर मानो [साधकोंके प्रति] २२- साधनोपयोगी पत्र४३ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १७ २३- कृपानुभूति४५ ११- आनन्दभूमि वृन्दावन एवं कृष्णका वेणुगीत २४- पढो, समझो और करो.....४६ (पद्मश्री प्रो॰ श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र)१९ २५ - मनन करने योग्य४९ १२- श्रीनारदजीका अभिमान-भंग [बोधकथा]२४ २६- 'आचार: परमो धर्मा:' [—**सम्पादक**]......५० चित्र-सूची २- भगवती सरस्वती मुख-पृष्ठ ३- यज्ञानुष्ठानद्वारा देवोपासना (इकरंगा) ६ ५ - सिद्ध शक्तिपीठ देवीपाटन..... जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ पंचवर्षीय शुल्क एकवर्षीय शुल्क विराट जय जगत्पते। गौरीपति रमापते ॥ जय ₹ २५० ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail) वार्षिक US\$ 50 (₹ 3,000) **Us Cheque Collection** पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15,000) शुल्क Charges 6\$ Extra

संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक —राधेश्याम खेमका. सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website: gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org £ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखप्र को भेजें।

Online सदस्यता हेत् gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें।

अ**ब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org** अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढें।

कल्याण याद रखो—धन संसार-निर्वाहके लिये आवश्यक है, पापके कीचडमें ढकेल देगा। परंतु उसको इतना आदर कभी मत दो कि जिसमें वह इष्टदेव याद रखों—धनका अभिमान बड़ी बुरी चीज है। या भगवान्के आसनपर अधिकार कर ले। धनका गौरव उसके धनाभिमानी लोग माता-पिता, गुरु, साधु, महात्मा और परपीड़ानिवारणार्थ किये जानेवाले त्यागमें है, न कि अनावश्यक भगवान्तक-का अपमान कर बैठते हैं। धन-दुर्मदान्धसे ऐसा संग्रहमें। धनका यथायोग्य सदुपयोग करो—उसके द्वारा कौन-सा पाप है, जो नहीं हो सकता। धनका नशा चढ़ा कि सुयोग्य पात्रकी पूजा करो, परंतु धनकी पूजा कभी न करो। मनुष्य पागल होकर गहरी खाईंमें गिरा! याद रखो-धन मनुष्यकी सुख-सुविधाके लिये है, धनका सदुपयोग-दुरुपयोग कर्ताकी बुद्धिपर निर्भर करता है। धनसे अन्नदान, भूमिदान, शिक्षादान, कूप-

उसे परेशान करनेके लिये नहीं। जिस धनसे मनुष्य एकदूसरेकी भलाई करता है, वही धन सार्थक है। धनको मनुष्यका
सेवक बनकर रहना चाहिये, स्वामी बनकर कदापि नहीं।
धन पाकर मनुष्यको सौभाग्य प्राप्त हुआ है या
दुर्भाग्य, इसका पता धनके व्यवहारसे लगता है। यदि धन
धर्ममें सहायक है तो वह मनुष्यके लिये सौभाग्य है और
यदि पापमें सहायक है तो दुर्भाग्य है। याद रखो—धन हो
जाना ही सौभाग्यका चिह्न नहीं है।

याद रखो—जो धन अन्यायमार्गसे नहीं आता,
अपने हकका और अपनी मेहनतकी सच्ची कमाईका आता
है, वही धन धर्ममें सहायक होता है। छल और चोरीसे
या असत्य और अन्यायके आश्रयसे जो धन आता है, वह

संख्या ४]

और जो धन केवल संग्रह करनेके लिये ही आता है, वह तो जैसे गढ़ेमें इकट्ठा हुआ बिना बहता जल सड़कर सूख जाता है, वैसे ही वह धन भी गंदगी फैलाकर अन्तमें सूख जाता है। सूखे जलकी जमीनमें दरारें पड़ जाती हैं, वैसे ही यह सूखा धन भी हृदयको विदीर्ण कर डालता है। धनमें कभी आसक्ति मत होने दो तथा न कभी उसे अपनी चीज समझो। जिसका धन है, उसीकी सेवामें

धनको सेवापरायण बनाना चाहिये, भोगपरायण नहीं।

तो पापबुद्धि पैदा करके पाप ही बढ़ाता है।

अपनी चीज समझो। जिसका धन है, उसीकी सेवामें उदारता तथा दक्षताके साथ निरन्तर खुले हाथों लगाते रहो। धन उपार्जन करो, पर धनका लोभ मत करो। लोभ पापका मूल है। जिस मनुष्यके मनमें धनका लोभ उत्पन्न हो गया है, उसका प्रयत्न करनेपर भी पापसे बचना बहुत कठिन है। याद रखो—धनको ही इष्ट माननेवाले धनियोंका, ऐसे धनियोंके आस-पास रहनेवाले उनके संगियोंका और धन-लोभियोंका संग मत करो। उनका संग बुद्धिमें भ्रम सहज ही बुद्धि बिगाड़ता है, फिर पहलेसे ही बिगड़ी बुद्धि हो तब तो कहना ही क्या है! 'गिलोय और नीम चढ़ी!' जिसके पास धन अधिक है, वह अधिक सुखी है— इस भ्रमको त्याग दो। वरं जिसके पास जितना धन अधिक है, उतनी ही उसके मनमें अभावकी भावना अधिक है। जितनी ही अभावकी अनुभूति अधिक है, उतना ही दु:ख

तालाब-निर्माण आदि सत्कार्य भी हो सकते हैं और शराब,

व्यभिचार, खून, गोले-बारूद और परमाणु-बमका निर्माण

आदि दुष्कार्य भी हो सकते हैं। जिनके पास धन हो, उन्हें

सात्त्विक बुद्धिसे धनका सदुपयोग करना चाहिये। धन

ह, उतना हा उसक मनम अभावका भावना आधक ह। जितनी ही अभावकी अनुभूति अधिक है, उतना ही दु:ख अधिक है। अवश्य ही धनहीन व्यक्तिके दु:खका स्वरूप दूसरा होता है और बड़े धनीके दु:खका दूसरा; पर जहाँ जितनी ही कामनाकी आग बढ़ी हुई होगी, उतना ही ताप—जलन अधिक होगी। यह निश्चय है। धनको कभी अनावश्यक महत्त्व मत दो—बटोरनेमें भी और दान करनेमें भी। धनसे ही दान, सत्कर्म या सेवा

होगी, यह धारणा ठीक नहीं है। सच्चे दान, सत्कर्म और सेवामें मनके भावकी महत्ता है, धनकी कदापि नहीं।

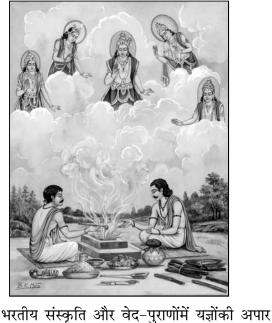
महिमा त्यागकी है, धनकी नहीं। धनको गरीबोंकी सेवामें लगाओ। किसीको सताने या तंग करनेमें जो मनुष्य धनका उपयोग करता है, उसके लिये तो वह धन महान् अभिशाप है और उसे भयंकर नारकीय यन्त्रणा प्राप्त करानेमें प्रधान कारण होता है। याद रखो—दुसरे का स्वत्व—हक मारकर धन

ऐसे धनियोंके आस-पास रहनेवाले उनके संगियोंका और कमाओ, हकका खाओ और शुद्ध हकका ही सदा सेवन धन-लोभियोंका संग मत करो। उनका संग बुद्धिमें भ्रम करो! दूसरे धनको भयानक विष समझो—'*धन पराय* पैक्मां**त्रिक्षेंऽध्वरिक्क्षिंटिंग्रें क्रिक्क्षिं क्रिक्क्षें क्रिक्क्ष्यक्षेत्रें सिक्क्ष्यक्षेत्रें सिक्क्ष्यक्षेत्रें सिक्क्ष्यक्षेत्र हिंस्**

कमानेकी कल्पना करना भी बड़ा पाप है। हकका

यज्ञीय संस्कृति आवरणचित्र-परिचय

लिये मनोऽभिलषित फल देनेवाला होगा। तुम इस यज्ञके



विश्वात्मा प्रभुको संतृप्त करनेकी विधि बतलायी गयी है। अत: जो जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें यज्ञ-यागादि शुभ कर्म अवश्य करने चाहिये। परमात्माके नि:श्वासभूत वेदोंकी मुख्य प्रवृत्ति यज्ञोंके अनुष्ठान-विधानमें है। यज्ञोंद्वारा समुद्भूत पर्जन्य—वृष्टि आदिसे संसारका पालन होता है। इस प्रकार परमात्मा यज्ञोंके सहारे ही विश्वका संरक्षण करते हैं। यज्ञकर्ताको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है। मनुष्यको अपने जीवनके सर्वविध कल्याणार्थ यज्ञधर्मको अपनाना चाहिये। मानवका और यज्ञका परस्पर घनिष्ठ

सम्बन्ध सृष्टिके प्रारम्भकालसे ही चला आ रहा है।

वस्तुत: देखा जाय तो मानव-जातिके जीवनका प्रारम्भ ही

यज्ञसे होता है। इस विषयका स्पष्टीकरण गीता (३। १०-

महिमा है। यज्ञ तो वेदोंका मुख्य प्रतिपाद्य ही है। यज्ञोंद्वारा

११)-में भी किया गया है-सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

श्रेयः परस्परं भावयन्तः परमवाप्स्यथ।। अर्थात् 'प्रजापति (ब्रह्मा)-ने सृष्टि-रचनाके समय यज्ञके साथ मानव-जातिको उत्पन्न करके उनसे कहा-

द्वारा देवताओंको सन्तुष्ट करो और देवता तुम लोगोंको यश-फल-प्रदानके द्वारा सन्तुष्ट करेंगे। इस प्रकार परस्पर तुम दोनों अत्यन्त कल्याणपदको प्राप्त करो।'

यज्ञ सकाम भी किये जाते हैं और निष्काम भी। अग्नि, भविष्य, मत्स्य आदि पुराणोंमें जो यज्ञों तथा उनकी विधि आदिका विस्तृत तथा स्पष्ट विवरण मिलता है, वह

वेद और कल्पसूत्रोंपर आधृत है। अनेक राजाओं आदिके चरित्र-वर्णनमें विविध यज्ञ-अनुष्ठानोंके सुन्दर आख्यान-उपाख्यान भी पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं। इन यज्ञोंसे परमपुरुष

नारायणको ही आराधना होती है। श्रीमद्भागवत (४। १४। १८-१९)-में स्पष्ट वर्णित है— यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान् यज्ञपूरुषः। इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितै:॥

> तस्य राज्ञो महाभाग भगवान् भूतभावनः। परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने॥ 'जिसके राज्य अथवा नगरमें वर्णाश्रम-धर्मोंका पालन

करनेवाले पुरुष स्वधर्म-पालनके द्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी

हैं।'पद्मपुराणके सृष्टिखण्ड (३।१२४)-में स्पष्ट कहा गया

है कि—'यज्ञसे देवताओंका आप्यायन अथवा पोषण होता

है। यज्ञद्वारा वृष्टि होनेसे मनुष्योंका पालन होता है, इस प्रकार

आराधना करते हैं, हे महाभाग! भगवान् अपनी वेद-शास्त्ररूपी आज्ञाका पालन करनेवाले उस राजासे प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि वे ही सारे विश्वकी आत्मा तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके रक्षक

संसारका पालन-पोषण करनेके कारण ही यज्ञ कल्याणके हेत् कहे गये हैं '-

यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवाः। आप्यायनं वै कुर्वन्ति यज्ञाः कल्याणहेतवः॥ सभी वेदों-पुराणोंने यज्ञोंके यथासम्भव सम्पादनपर

अत्यधिक बल दिया है। यज्ञ वृष्टिमें सर्जक होनेके कारण इनसे प्रकृति और पर्यावरणका संरक्षण भी होता है, परंत् यज्ञोंका फल केवल ऐहलौकिक ही नहीं, अपित पारलौकिक

भी है। इनके अनुष्ठानसे देवों, ऋषियों, दैत्यों, नागों, किन्नरों,

मनुष्यों तथा सभीको अपनी अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति ही नहीं हुई, प्रत्युत उनका सर्वांगीण अभ्युदय भी हुआ है। अतः

'इस यज्ञके द्वारा तुम्हारी उन्नति होगी और यह यज्ञ तुम्हारे इनका सम्पादन अवश्यकरणीय है।

भगवत्प्राप्तिकी साधनामें आत्मनिवेदनकी भूमिका संख्या ४] भगवत्प्राप्तिकी साधनामें आत्मनिवेदनकी भूमिका (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) भक्तिका पहला अंग श्रवण है। इसलिये इसको हो गया; अत: उस पिताकी गोदमें बैठकर उसे बड़ा ही सर्वप्रथम भक्ति कहते हैं। श्रवणके बिना कोई भक्ति नहीं आनन्द होता है; क्योंकि इससे उसके अन्न-वस्त्रकी हो सकती। यदि कोई ऐसा उदाहरण मिले तो उसमें भी चिन्ता सदाके लिये मिट जाती है। यह तो एक मनुष्यकी गोदमें बैठनेकी बात है, परंतु जो उस परमात्माको पूर्व-संस्कार तो मिलेंगे ही, जिनसे यही प्रतीत होता है आत्मसमर्पण कर देता है, उसके आनन्दका क्या ठिकाना कि इसने पूर्वजन्ममें ही श्रवण कर लिया होगा। श्रवण आदि भक्ति है। पहले सुनता है तभी तो उसकी रुचि है! वहाँ भयकी बात ही कहाँ है? जब साधारण धनवानुकी गोदमें बैठनेवालेको भी भय नहीं रहता, तब होकर वह इस ओर (भक्तिकी ओर) लगता है। परमात्मा तो सर्वसामर्थ्यवान् है, उसकी गोदमें भय कैसा! आत्मनिवेदन अन्तिम भक्ति है, इसमें और भक्तियाँ समा जाती हैं। आत्मनिवेदन हो जानेपर उस साधककी भक्ति वहाँ पहुँचकर फिर शान्तिका पार नहीं रहता। धनवान्की अनन्य हो जाती है। शरणागतिके जितने भाव हैं, वे स्वयं गोदमें बैठनेवाला तो धनके स्वार्थवश, उसमें बाधा ही उसमें आ जाते हैं। पतंजलिने जो 'ईश्वरप्रणिधान' पड़नेपर उसीका अनिष्ट-चिन्तन कर सकता है। यह कहा है, वह भी इस पुरुषमें आ जाता है तथा उसका उसकी नीचता और कृतघ्नता है। परंतु परमात्माकी फल समाधि-सिद्धि भी उसे मिल जाती है। फिर गोदमें कोई इस स्वार्थसे नहीं बैठता, उसको इसी बातमें उद्धारकी तो उसे कोई चिन्ता ही नहीं रहती, उसका तो बड़ा आनन्द होता है कि प्रभुने मुझको अपना लिया! उद्धार निश्चित हो चुका। हमलोग तो उसके आनन्दको समझ नहीं सकते। बड़ी आत्मसमर्पण करके भक्त सर्वथा निश्चिन्त हो विलक्षण बात है। एक करोड़पति वाइसरायसे मिलने जाता है। उसे अपने लोक-परलोकके लिये किसी जाता है, उसके साथ दो-चार आदमी हैं और वह प्रकारका भय या चिन्ता नहीं रहती। एक मनुष्य लड़का भी है, जिसे उसने दत्तक लेनेका विचार किया पाठशाला चलाता है, रात-दिन उसकी चिन्तामें लगा है। है। वाइसराय पूछते हैं कि यह लड़का किसका है ? वह यदि कोई योग्य सम्पत्तिशाली सज्जन उस कामको सँभाल लड़का कहता है कि मैं इनका हूँ, परंतु जबतक वह करोड़पति स्वयं अपने मुँहसे यह बात स्वीकार नहीं कर ले तो फिर वह निश्चिन्त हो जाता है। फिर कभी-कभी वह उसका काम करता भी है तो भी उसे कोई चिन्ता लेता, तबतक वाइसराय उसकी बात नहीं मानते। यदि नहीं होती; इसी प्रकार जैसे कोई आदमी अपना काम दूसरी बार वह लड़का अकेला जाता है तो वाइसराय किसी योग्य व्यक्तिको सौंपकर परदेश जाय तो पीछेके उसका कोई स्वागत नहीं करते; कहते हैं सेठका पत्र लाओ। तुम ही तो कहते हो कि मैं उनका हूँ, उन्होंने कामकी कोई चिन्ता नहीं रहती, ऐसे ही जो अपने-आपको भगवानुके अर्पण कर देता है, उसके लिये भय कहाँ स्वीकार किया है? इस प्रकार उस लडकेके कहनेका कोई विशेष असर नहीं पड़ता। वह लड़का और चिन्ताका कोई स्थान ही नहीं रह जाता। उसके आनन्दका पार नहीं रहता। जैसे किसी कंगाल लड़केको अपने मुँहसे कहता है 'मैं इनका हूँ।' इसमें उसे वह कोई करोड्पित दत्तक (गोद) ले तो वह बड़ी प्रसन्नतासे आनन्द नहीं मिलता, जो उस धनवान्के यह कहनेपर उस पिताकी गोदमें जाकर बैठ जाता है और निश्चिन्त मिलता है कि 'यह मेरा है।' इसी प्रकार अभी तो हमीं हो जाता है। वह जानता है कि मेरे पास पाँच पैसे भी कह रहे हैं कि 'हम आपके हैं।' जिस दिन प्रभू हमें नहीं थे और अब मैं करोडोंकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी स्वीकार कर लेंगे और कहेंगे कि 'तू मेरा है', उसी दिन

भाग ९४ हम उनके सच्चे अपने होंगे। जिसे परमात्मा अपनाते हैं, हैं। एक पतिव्रता पतिके सुखसे सुखी होती है। जिस उसके आनन्दको हमलोग क्या कह सकते हैं? उसमें समय पतिदेव उसका तन-मन अपने काममें लाते हैं, उस स्वार्थ नहीं, प्रेम है। दत्तक लिये गये लडकेको तो यदि समय वह अत्यन्त आनन्दित होती है। यद्यपि यह पतिव्रता अपने पतिमें ईश्वर-भाव ही रखती है, परंतृ तो पिता कष्ट देते हैं तो वह विरुद्ध भी हो जाता है; क्योंकि वह तो धनके लोभसे गया है, परंतु जो निष्काम भी यह तो समझती है कि वे मेरे लिये ही नारायण हैं। प्रेमभावसे अपने-आपको भगवान्के समर्पित कर देते हैं, दो घनिष्ठ मित्रोंमेंसे यदि एक दूसरेकी वस्तुको बिना पूछे उनके शरीरके तो यदि टुकड़े-टुकड़े भी कर दिये जायँ अपने काममें लाता है तो उस वस्तुके स्वामीको आनन्द तो भी वे अपना अहोभाग्य ही समझते हैं। वहाँके ही होता है; यह समझकर उसे और भी अधिक आनन्द उपयुक्त तो कोई उदाहरण ही नहीं प्रतीत होता। कोई होता है, कि मेरे मित्रने मेरी वस्तु स्वीकार कर ली। ये सब तो लौकिक बातें हैं। इसी प्रकार यदि साक्षात् आदमी किसी महात्माके पास जाता है और उनसे एक परमेश्वर हमारी वस्तुओं और हमारे शरीर आदिको अपने वस्त्र स्वीकार करनेकी प्रार्थना करता है। महात्मा काममें लाते हैं तो उससे बढ़कर हमारे लिये और क्या अस्वीकार कर देते हैं। वह तो अर्पण करता है, परंतु जहाँतक महात्मा स्वीकार नहीं करते, वहाँतक अर्पण आनन्दकी बात हो सकती है? इस प्रकार जो प्रभुको

नहीं होता! जब विशेष आग्रह करनेपर महात्मा स्वीकार कर लेते हैं, तब अर्पण हो जाता है। वह कहता है, अहा! मेरा अहोभाग्य है, जो मेरा वस्त्र महात्माजीने स्वीकार कर लिया! फिर जब महात्मा उस वस्त्रको अपने सेवकोंको न देकर स्वयं अपने काममें लाते हैं, तब उसे कितना आनन्द होता है! महाराजकी सेवामें एक पंखा भेंट किया जाता है, गरमी खूब पड़ रही है, उसी पंखेसे अपने ही हाथसे हवा करनेका विशेष आग्रह है।' रानीके स्वीकार करनेपर राजा-रानी दोनोंने पुत्रसे पूछा। पुत्र बोला—ऐसा अवसर फिर कहाँ मिलेगा? ये

करनेपर यदि वे महात्मा स्वीकार कर लेते हैं तो कितना आनन्द होता है। महाराज सोना चाहते हैं, उनसे प्रार्थना की जाती है कि महाराज! मेरी गोदमें सोनेकी कृपा कीजिये। विशेष आग्रहसे यदि वे स्वीकार कर लें तो कितना आनन्द होता है। अब यदि देखा जाय तो वह महात्मा हैं या नहीं, इसका पता नहीं। हमारी भावनासे ही हमको इतना आनन्द होता है। ऐसे ही वह परमात्मा जिसको बहुत-से महात्मा प्राप्त कर चुके हैं, यदि हमारे शरीरको अपने काममें लाते हैं या काटते भी हैं तो कितना आनन्द होना चाहिये। उस समय हमारा रोम-रोम हर्षित हो जाना चाहिये। यदि हमारे शरीरके

आत्मसमर्पण कर देता है, उसके आनन्दका कोई ठिकाना नहीं रहता। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके सहित साधुवेषमें सिंहको साथ लिये राजा मयूरध्वजके यहाँ पहुँचे, उस समय उन्होंने राजाके पुत्र रत्नकुमारका आधा शरीर अपने सिंहके लिये मॉॅंगा। राजाने कहा—'महाराज! मुझे तो कोई आपत्ति नहीं, परंतु रानीसे पूछना आवश्यक

तो साक्षात् भगवान् हैं। राजा और रानी दोनों पुत्रको चीरने लगे, पुत्र हँसता है, खिलखिलाता है। उसे यह ज्ञान है कि ये परमेश्वर हैं। उसमें श्रद्धा है, प्रेम है और प्रसन्नता है। राजा और रानीने तो अपनी प्यारी वस्तु ही भगवान्के अर्पण कर दी! राजा-रानीको उसके समान आनन्द कैसे हो सकता था? उस समय रानीकी आँखोंसे आँसू गिरते देखकर साधु बोले—'हम नहीं जीमते।' रानी कहती है—'महाराज! मैं पुत्रके मृत्युशोकसे नहीं

आया। आधेने न जाने क्या पाप किया है?' भगवान् चमडेकी जुतियाँ बनाकर वे पहन लें, तो हम कृतकृत्य तुरंत प्रकट हो गये। वे तो प्रकट होनेवाले ही थे। यदि हो जायँ। अहा! हमारे शरीरका ही यह उपयोग हो रहा हमारा भाव ऐसा हो तो हमारी सब वस्तुएँ भगवानुके है। कितनी दया है! हमारी वस्तुको प्रभू काममें ला रहे अर्पण ही हैं। उन तीनों (राजा-रानी और पुत्र)-में

रो रही हूँ, दु:ख यह है कि पुत्रका आधा शरीर काममें

संख्या ४] भगवत्प्राप्तिकी साधनामें	आत्मनिवेदनकी भूमिका ९
**************************************	**************************************
किसीको भी दु:ख होता तो भगवान् स्वीकार नहीं करते।	है।' जैसे पंचायतीके सामानोंसे जो चाहे वही अपना
हर्षके साथ अर्पण करना चाहिये। राजा मयूरध्वज, रानी	काम निकाल सकता है, उसी प्रकार उस पुरुषसे भी
और राजकुमारका-सा भाव हो तो भगवान् तुरंत प्रकट	सबको अपना काम निकाल लेनेका अधिकार-सा होता
हो जायँ। जो ऐसी प्रसन्नतासे अपने-आपको भगवदर्पण	है। ऐसे विरक्त पुरुषोंका जीना संसारके उपकारके लिये
करता है, उसीको भगवान् स्वीकार करते हैं। ऐसे प्रेमसे	ही होता है। परंतु उनमें ऐसा भाव नहीं होता कि मैं
दी हुई वस्तुको भगवान् नहीं त्यागते। महात्मा लोग भी	संसारके हितके लिये विचरता हूँ। जो ऐसा कहता है वह
प्रेमसे दी हुई वस्तुको आवश्यकता होनेपर ले लेते हैं।	तो अभिमानी है, वह जीवन्मुक्त कभी नहीं हो सकता।
वे समझते हैं कि नहीं लेनेसे इस बेचारेको दु:ख होगा।	अमानित्व आदि सद्गुण तो उनमें पहलेसे ही आ जाते हैं।
फिर परमात्माकी ओरसे तो खुली आज्ञा हो चुकी है—	ऐसे पुरुषोंके दर्शनसे नेत्र, भाषणसे वाणी और
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।	चिन्तनसे मन पवित्र हो जाता है। ऐसे पुरुष संसारमें
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥	हजारों-लाखों हो चुके हैं। उत्तराखण्डकी तपोभूमिमें तो
(वा०रा० ६। १८। ३३)	ऐसे बहुत-से ऋषियोंने तपस्या की है। वह पवित्र भूमि
'जो एक बार भी सच्चे हृदयसे उनकी शरण हो	स्वाभाविक ही वैराग्ययुक्त है। उस भूमिमें रहनेवाले महात्मा
जाता है, उसको वे कभी नहीं त्यागते।' जैसे किसीके	पुरुषोंकी महिमा कहाँतक गायी जाय? भगवान्से यदि
पास एक वस्त्र है, उस वस्त्रने अपने स्वामीको आत्म-	कुछ माँगना हो तो यही माँगे कि 'हे प्रभो! जिन महात्माओंकी
समर्पण कर रखा है। वह उसे फाड़े, फेंके, जलाये,	महिमा आप गाते हैं, हमें उन्हींके चरण-चिह्नोंका अनुगामी
बिछाये, ओढ़े अथवा किसीको दे डाले; वह कुछ भी	बनाइये।' और माँगनेकी भी क्या आवश्यकता है। जो
प्रत्युत्तर नहीं देता, वह उसका कैसा ही उपयोग करे, उस	पुरुष भगवान्की शरण हो जायगा और जिसे भगवान्
वस्त्रको कोई आपत्ति नहीं होती। इस प्रकार जो उन	अपना लेंगे, उसके उद्धारकी तो बात ही क्या है, वह तो
प्रभुको आत्मसमर्पण कर देता है, वे उसका जो चाहे सो	औरोंका भी उद्धार कर सकता है। ऐसे महात्मामें ऐसे
करें, उसे कोई आपत्ति नहीं होती। ऐसा पुरुष जीता हुआ	लक्षण आ जाते हैं, जैसा कि भगवान् कहते हैं—
ही मुक्त हो जाता है। वह जीता हुआ ही मुर्देके समान	समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
प्रभुके समर्पित हो जाता है, मुर्दा कोई आपत्ति कर सकता	शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
हो तो वह भी करे। इस प्रकार जो जीता हुआ ही मुर्देका	तुल्यनिन्दास्तुतिर्मोनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
सच्चा स्वाँग कर दिखलाता है, वही जीवन्मुक्त है।	अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ऐसा जीवन्मुक्त महात्मा निर्भय हो जाता है, वह	(गीता १२।१८-१९)
शोकसे तर जाता है तथा अटल और नित्य शान्तिको	'जो पुरुष शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है
प्राप्त होता है। उस जीवन्मुक्तका संसारमें विचरना	तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंमें सम है और
हमलोगोंके कल्याणके लिये ही होता है। उसे अपने	सब संसारमें आसक्तिसे रहित है तथा जो निन्दा-स्तुतिको
लिये कोई कर्तव्य नहीं रहता—	समान समझनेवाला और मननशील है अर्थात् ईश्वरके
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।	स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला है एवं जिस-किसी
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥	प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है,
(गीता ३। १७)	और रहनेके स्थानमें ममतासे रहित है, वह स्थिर
'जो पुरुष इस प्रकारसे भगवत्–शरण हो जाता है,	बुद्धिवाला भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।' (आत्मसमर्पणसे
उमामातवीं बात के कहर जाते हैं है एक उसमा के जिल्ला के स्वार्थ के स्वार्थ के स्वार्थ के स्वार्थ के स्वार्थ के स	aोत्तिक स्थिपिAक्टाल प्रशोतमाती और BY Avinash/Sha
	

सुखका उपाय (श्रद्धेय सन्त श्रीमोटाजी, नाडियाद-गुजरातवाले) व्यवहारमें प्रकृति किसीके पिता, माता, बहन, भाई, पुत्री, पुत्र होते हैं। जीवनमें प्रत्येकके साथ जिस तरहका सम्बन्ध होता है, भगवानुका 'नामस्मरण' एक ऐसा शब्द है कि जिनकी बुद्धि तर्कप्रधान है, वे तर्क किये बिना नहीं उस तरहका व्यवहार करते हैं। उनके कारण हमें दु:ख-रहेंगे। ऐसे लोग सोचते हैं कि उससे जीवनमें क्या अशान्ति आदि होते हैं, और हमारे कारण उन्हें भी ऐसा होता है। संसारमें दूसरे जीवोंसे हमें परेशानी, संताप, बदलाव आयेगा? उसके बदले जीवनमें दूसरी कोई प्रवृत्ति करें, समाजकी सेवा करें, समाजके अन्दर उद्वेग, अड्चन, तकलीफ हुए बगैर नहीं रहती है। उससे समाजके दूसरे जीवोंके लिये कुछ अच्छा कर सकें, मुक्त होना हो तो किसी भी प्रकारकी प्रवृत्ति करें तो मुक्त तो बदलाव आयेगा। मुझे भी उस समयमें ऐसा नहीं हो सकते। प्रवृत्ति उस प्रकारकी होनी चाहिये कि लगता था कि भगवान्के नामस्मरणमात्रसे जीवनमें जिससे दूसरेके साथ कम-से-कम सम्पर्क हो और हम उन्नति होगी—ऐसा स्वीकार नहीं कर सकता। इसका उससे अलिप्त होते जायँ। ऐसी प्रवृत्ति वह नामस्मरण है। उसके साथ हमारी चालू प्रवृत्ति भी हो सकती है। हल मुझे मिलता नहीं था, परंतु धीरे-धीरे अनुभवसे मुझे लगा कि मनुष्यकी प्रवृत्तिके साथ प्रकृति और नामस्मरणसे एकाग्रता स्वभाव जुड़े हुए हैं। हम मनुष्योंके साथ प्रत्येक भगवान्की कृपासे मुझे मिरगी नामकी बीमारी हुई।

प्रवृत्ति स्वभाव और प्रकृतिके अनुसार ही करते हैं। हम जीवोंके साथके सम्बन्धोंमें भी वैसा ही करते रहते हैं। व्यवहारमें जिस तरह वर्ताव होता है, उसका माध्यम प्रकृति और स्वभाव है। हम कितने ही मनुष्योंके लगा और जब वह भावनापूर्वक होने लगा तब धुन प्रकट साथ प्रवृत्तिके कारण जुड़े हुए होते हैं। जिन-जिन होने लगी। यह जो करे उसे ही पता लगता है। यह जीवोंके साथ जुड़े हुए होते हैं, उन सभीकी प्रकृति और स्वभाव अलग-अलग प्रकारके होते हैं। और उस प्रकृति और स्वभावके अनुसार ही व्यवहार होता

है। इसमें इच्छा-अनिच्छाका कोई प्रश्न रहता नहीं। जिस तरह अग्नि गरम है, ऐसा हमारी समझके कारण लगता है, उसी तरह कर्मको भी अलग-अलग रीतिसे करना होता है और सन्त-महात्मा वैसा

प्रवृत्तिकी पसन्दगी कर्म व्यवहारमें अनेक मनुष्योंके साथके सम्बन्धोंमें

उनकी प्रकृति और स्वभावके कारण अशान्ति, संघर्ष, उलझन, तकलीफ प्रकट होती है, शान्ति नहीं रहती। ऐसे सन्त-महात्मा जीवनमें अनेक जीवोंके साथ इस रीतिसे सम्बन्धमें होते हैं और वैसे उसके कारण सभीके

साथमें जीवदशामें भाग लेते होते हैं। समाजमें हम

करते होते हैं।

मुझे एक महात्माने नामस्मरण करनेको कहा। उसमें ऐसा बल प्रकट होता गया कि उसके कारण गुंजन प्रकट होने लगा। शब्दके गुंजनके कारण भावनापूर्वक उच्चारण होने

िभाग ९४

हकीकतकी बात है। कल्पनाकी बात नहीं। जब नामस्मरणमें सातत्य प्रकट होगा, तब धुन प्रकट होगी और धुन प्रकट होगी तो लय (रिदम) आयेगी, उसके कारण दोलन होने लगता है और दोलन होनेकी स्थितिसे एकाग्रता अपने-आप होती है। नामस्मरणमें जैसे-जैसे सातत्य बढ़ेगा,

वैसे-वैसे वह अत्यन्त गाढ़ा होता जायगा। ऐसा हो, तब

प्रवृत्ति करते हुए भी, दूसरोंके साथ सम्बन्ध होते हुए भी

दु:ख, उद्देग, संताप इत्यादिकी उपस्थिति होते हुए भी वह

अलिप्त रहता है। जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते जायँगे, वैसे-वैसे अशान्ति नहीं लगती। नामस्मरणसे आत्मबल नामस्मरणकी प्रवृत्तिमें रहें तो वह सुखद बनती

है और आत्मबल टिकता है। यह अनुभव की हुई हकीकत है। भगवानुका स्मरण यह अभीकी जीवदशाकी प्रवृत्तिसे अलग है। हम द्वन्द्वातीत, गुणातीत नहीं हुए तिर्थसेवन केसे करें ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)
लोग कहते हैं कि 'पुराणोंमें तीर्थोंकी इतनी महत्ता होनेपर भी मनुष्य एक अपनी माताको तो बचाता ही है। बता दी गयी है कि सदाचार तथा ज्ञानके साधनोंका ऐसे ही पापी मनुष्यको भी मोक्षार्थी होनेपर एक तिरस्कार हो गया है। तीर्थ-सेवनके कुछ अनुचित काशीको तो बचाना ही चाहिये। दूसरोंकी निन्दा करना पक्षपातीलोग भी ऐसा कह देते हैं कि बस, अमुक जिनका स्वभाव है और जो परस्त्रीकी इच्छा करते हैं, तीर्थका सेवन करो, फिर चाहे जो पापाचार-अनाचार उनके लिये काशीमें रहना उचित नहीं। कहाँ मोक्ष करो, कोई डरकी बात नहीं है। 'पर वस्तुत: ऐसी बात देनेवाली काशी और कहाँ ऐसे नारकी मनुष्य, जो

नहीं है। इस भूलमें कोई न रहे, इसीसे पुराणोंमें जहाँ तीर्थादिका माहात्म्य प्रचुर मात्रामें लिखा गया है, वहीं ऐसी बात लिख दी गयी है, जो सारे भ्रमोंको दूर कर देती है। स्कन्दपुराणमें काशीका बड़ा माहात्म्य है। पर साथ ही कहा गया है कि पाप करनेवाले लोग काशीमें न रहें—

सुखेनान्यत्र कर्तव्यं मही ह्यस्ति महीयसी॥ अपि कामातुरो जन्तुरेकां रक्षति मातरम्। अपि पापकृता काशी रक्ष्या मोक्षार्थिनैकिका॥ परापवादशीलेन परदाराभिलाषिणा। तेन काशी न संसेव्या क्व काशी निरयः क्व सः॥

पापमेव हि कर्तव्यं मितरस्ति यथेदृशी।

अभिलष्यन्ति ये नित्यं धनं चात्र प्रतिग्रहै:।

परस्वं कपटैर्वापि काशी सेव्या न तैर्नरै:॥

परपीडाकरं कर्म काश्यां नित्यं विवर्जयेत्।

तदेव चेत् किमत्र स्यात् काशीवासो दुरात्मनाम्॥

(काशी॰ २२।९५—९९) अर्थार्थिनस्तु ये विप्र ये च कामार्थिनो नराः। अविमुक्तं न तैः सेव्यं मोक्षक्षेममिदं यतः॥

शिवनिन्दापरा ये च वेदनिन्दापराश्च ये। वेदाचारप्रतीपा ये सेव्या वाराणसी न तै:॥ परद्रोहधियो ये च परेर्घ्याकारिणश्च ये।

परद्रोहिधयो ये च परेर्ष्याकारिणश्च ये।
परोपतापिनो ये वै तेषां काशी न सिद्धये॥
(काशी०१२२।१०१—१०३)

कहीं भी जाकर सुखसे पाप कर सकता है। कामातुर

(काशा० १२२ । १०१—१०३) 'मैं तो पाप करूँगा ही—ऐसी जिसकी बुद्धि है, उसके लिये पृथ्वी बहुत बड़ी पड़ी है। वह काशीसे बाहर देनेवाली काशी और कहाँ ऐसे नारकी मनुष्य, जो प्रतिग्रहके द्वारा धनकी इच्छा करते हैं और जो कपट-जाल फैलाकर दूसरोंका धन हरण करना चाहते हैं, उन

भाग ९४

मनुष्योंको काशीमें नहीं रहना चाहिये। काशीमें रहकर ऐसा कोई काम कभी नहीं करना चाहिये, जिससे दूसरोंको पीड़ा हो। जिनको यही करना हो, उन दुरात्माओंको काशीवाससे क्या प्रयोजन है!' 'विप्रवर! जो अर्थार्थी या कामार्थी हैं, उनको इस

मुक्तिदायी काशीक्षेत्रमें नहीं रहना चाहिये। जो शिवनिन्दामें और वेदकी निन्दामें लगे रहते हैं तथा वेदाचारके विपरीत आचरण करते हैं, उनको वाराणसीमें नहीं रहना चाहिये। जो दूसरोंसे द्रोह करते हैं, दूसरोंसे डाह करते हैं और दूसरोंको कष्ट पहुँचाते हैं, काशीमें उनको सिद्धि नहीं मिलती।' पापात्मा तीर्थफलसे वंचित रहता है—यह स्पष्ट

प्राप्ति नहीं होती।'

कहा गया है—
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽछिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥
(काशी० २२।९५—९९)

'श्रद्धाहीन, पापात्मा (तीर्थमें पापीकी—पाप करनेवालेकी—शुद्धि होती है, पर जिसका स्वभाव ही पापमय है, उस पापात्माकी नहीं होती), नास्तिक, संदेहशील और हेतुवादी—इन पाँचोंको तीर्थफलकी

वस्तुतः तीर्थका फल किसको मिलता है— प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्। अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रिय:।

संख्या ४] तीर्थसेवन	•••

विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते॥	स्नेह न रखनेवाले, मिट्टी, पत्थर और सोनेमें समान
अकोपनोऽमलमितः सत्यवादी दृढव्रतः।	बुद्धि रखनेवाले, मन-वाणी और शरीरके द्वारा किये
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥	जानेवाले त्रिविध कर्मोंसे सदा सब प्राणियोंको अभय
(काशी० ६।४९—५१) १ - २ - २ - २ - २ - २ - २ - २ - २ - २ -	देनेवाले, सांख्य और योगकी विधिको जाननेवाले, धर्मके
'जो प्रतिग्रहसे निवृत्त है, जिस-किसी स्थितिमें ही	स्वरूपको समझनेवाले और संशय-संदेहोंसे रहित हों।'
संतुष्ट है और अहंकारसे भलीभाँति छूटा हुआ है, वह	मानस तीर्थोंका वर्णन करते हुए यहाँतक कह दिया
तीर्थफलका भोग करता है। जो दम्भ नहीं करता, सकाम	गया है कि—
कर्मका आरम्भ नहीं करता, स्वल्पाहार करता है,	शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।
इन्द्रियोंको जीत चुका है और समस्त आसक्तियोंसे	येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥
भलीभाँति मुक्त है, वह तीर्थफलका भोग करता है। जो	सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
क्रोधरहित है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य-भाषण	सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥
करता है, दृढ़निश्चयी है और समस्त प्राणियोंको अपने	दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते।
आत्माके समान ही जानता है, वह तीर्थफलका भोग	ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
करता है।' क्योंकि—	ज्ञानं तीर्थं व्रतं तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः।	तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥
परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटाग्रहाः ॥	न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
मलचैलावृताशान्ताशुचयस्त्यक्तसिक्कयाः ।	स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः॥
तेषां मलिनचित्तानां फलमत्र न जायते॥	यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः।
(वैष्णव० बदरि० ६।६९-७०)	सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः॥
(भगवान् शंकर स्कन्दजीसे कहते हैं—)	न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः।
'जो चलबुद्धि हैं, लोभी हैं और तथ्यकी बात नहीं	मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तःसुनिर्मलः॥
कहते, जिनके मनमें परिहास, पर-धन और पर-स्त्रीकी	जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः।
इच्छा है तथा जिनका कपटपूर्ण आग्रह है, जो दूषित	न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः॥
वस्त्र पहनते हैं, जो अशान्त, अपवित्र और सत्कर्मोंके	विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते।
त्यागी हैं, उन मलिनचित्त मनुष्योंको इस तीर्थमें कोई	तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥
फल नहीं मिलता।'	चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुध्यति।
तीर्थोंमें किस प्रकार रहना चाहिये, इसपर कहा	शतशोऽपि जलैधौंतं सुराभाण्डमिवाशुचि॥
गया है—	दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं यथा।
निर्ममा निरहङ्कारा निःसङ्गा निष्परिग्रहाः।	सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः॥
बन्धुवर्गेण निःस्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः॥	निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
भूतानां कर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः।	तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥
सांख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाशिछन्नसंशया:॥	ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
(अवन्तिकाखण्ड० ७। ३२-३३)	यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥
(इस क्षेत्रमें वास करनेवाले) 'ममतारहित, अहंकार-	(काशीखण्ड ६। २९—४१)
राह्मिं nd प्रांशकिरिहित ्रप क्षिक्षकर्म् मा	arwa शर्भार्भगुर्धेहें श्रीतीनीनिकिटिहि ह्रिम्लीह ां के इम िर् धाः

िभाग ९४ तीर्थोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। इन तीर्थोंमें स्नान करके ज्ञान-जलमें जो स्नान करता है, वही परम गतिको प्राप्त

करता है।'

ऐसे प्रसंग और भी आये हैं।

इससे यह सिद्ध है कि तीर्थ-व्रत करनेवालोंके लिये

भी पापोंके त्याग, इन्द्रियसंयम और तप आदिकी बड़ी

आवश्यकता है। इसका यह अर्थ भी नहीं समझना

चाहिये कि भौम तीर्थ कोई महत्त्व ही नहीं रखते। उनका

बड़ा महत्त्व है और वे भी सच्चे हैं। वस्तुत: पुराण

सर्वसाधारणकी सर्वांगीण उन्नति और परम कल्याणकी

साधन-सम्पत्तिके अटूट भंडार हैं। अपनी-अपनी श्रद्धा, रुचि, निष्ठा तथा अधिकारके अनुसार साधारण अपढ़

मनुष्यसे लेकर बड़े-से-बड़े विचारशील बुद्धिवादी पुरुषोंके

लिये भी इनमें उपयोगी साधन-सामग्री भरी है। ज्ञान,

विज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान,

तप, संयम, नियम, सेवा, भूतदया, वर्णधर्म, आश्रमधर्म,

व्यक्तिधर्म, नारीधर्म, मानवधर्म, राजधर्म, सदाचार और

व्यक्ति-व्यक्तिके विभिन्न कर्तव्योंके सम्बन्धमें बड़ा ही

विचारपूर्ण और अत्यन्त कल्याणकारी अनुभूत उपदेश बड़ी रोचक भाषामें इन पुराणोंमें भरा गया है। साथ

ही पुरुष, प्रकृति, प्रकृति-विकृति, प्राकृतिक दृश्य,

ऋषि-मुनियों तथा राजाओंकी वंशावली तथा सृष्टिक्रम

आदिका भी निगूढ़ वर्णन है। इनमें इतने अमूल्य रत्न

छिपे हैं, जिनका पता लगाकर प्राप्त करनेवाला पुरुष

लोक तथा परमार्थकी परम सम्पत्ति पा करके कृतकृत्य

मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। सत्य, क्षमा, इन्द्रियसंयम, सब प्राणियोंके प्रति दया, सरलता, दान, मनका दमन, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धृति

और तपस्या—ये प्रत्येक एक-एक तीर्थ हैं। इनमें

ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है। मनकी परम विशुद्धि तीर्थोंका भी तीर्थ है। जलमें डुबकी मारनेका नाम ही स्नान नहीं है, जिसने इन्द्रिय-संयमरूप स्नान किया है, वही स्नान है

और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।'

'जो लोभी है, चुगलखोर है, निर्दय है, दम्भी है

और विषयोंमें फँसा है, वह सारे तीर्थोंमें भलीभाँति स्नान कर लेनेपर भी पापी और मिलन ही है। शरीरका मैल

उतारनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनके मलको

निकाल देनेपर ही भीतरसे सुनिर्मल होता है। जलजन्तु

जलमें ही पैदा होते हैं और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे

स्वर्गमें नहीं जाते; क्योंकि उनके मनका मैल है और विषयोंसे वैराग्यको ही निर्मलता कहते हैं। चित्त अन्तरकी वस्तु है, उसके दुषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नानसे शुद्धि

नहीं होती। शराबके भाण्डको चाहे सौ बार जलसे धोया जाय, वह अपवित्र ही रहता है, वैसे ही जबतक मनका भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, तप,

शौच, तीर्थसेवा और स्वाध्याय—सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयममें हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान

हैं; ध्यानसे विशुद्ध हुए रागद्वेषरूपी मलका नाश करनेवाले

नाहिं

जग

पानी

एहसान

ऐसे

चढ़ि

सौ

में

मैले

दै

तुम

तुम

यानें

तुम

'शाकुन्तल'

÷

얆

ા

જ

विनय-प्रार्थना

हो जाता है।

(डॉ० श्रीसतीशजी चतुर्वेदी 'शाकुन्तल') हेरि हम हारे हरि! संसार।

हितैषी पायौ, हरै दुखन कौ भार॥ ÷ भू-नभ जैसौ हे अंतर करतार! ÷ की पोखर, सुरसरि की तुम धार॥ ÷ सोऊ दियौ दबाए उधार। ĸ देवनहारे गिनत नहीं उपकार॥ सीतल ÷ तिहारौ पवन फुहार। पै है बेड़ा नाम-नाव जाइ पार॥ ૹ संख्या ४] नाम-स्मरण नाम-स्मरण (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर) मायाके फंदेसे छूटनेके लिये बड़े मालदारसे मिलना है। किंतु सीधे उसके पास तो पहुँच नहीं सकते; क्योंकि उसके दरवाजेपर पहरेदार, नामस्मरण ही साधन परमेश्वरकी भक्ति करें, उसका नामस्मरण करें, ऐसा कुत्ते आदि हैं। उनके चंगुलसे छूट पायेंगे तभी मालिकसे बहुत लोगोंको जीसे लगता है, लेकिन किसी-न-किसी मिल पायेंगे। किंतु मान लो कि उस मालिकके हस्ताक्षरका कारणसे वह हो नहीं पाता। ऐसा क्यों होता है ? इसका पत्र जिसमें लिखा हो कि तुम फलाने दिन मुझसे मिलो कारण है मायाकी बाधा। मायाको हटाकर भगवान्तक तो वह पत्र दिखाते ही पहरेदार हमें बिना शिकायत कैसे पहुँचें ? माया तो भगवान् की छायाकी तरह है। यदि भीतर जाने देगा और हम मालिकसे मिल पायेंगे। उसी भगवानुको कहा जाय कि उसे छोड़कर तुम आओ तो तरह यदि हम नामस्मरण अर्थात् भगवान्के हस्ताक्षरका यह कहना वैसा ही है कि तुम मत आओ। यदि किसी पत्र ले जायँ तो मायारूपी पहरेदार भगवान्के हस्ताक्षर व्यक्तिसे कहा जाय कि आप आइये, लेकिन अपनी देखकर भीतर जाने देगा और हम भगवान्से मिल छायाको मत लाइये, तो यह कैसे सम्भव होगा? अत: पायेंगे। इसलिये मायाके फंदेसे मुक्त होनेके लिये मायाका अस्तित्व तो होगा ही। प्रश्न तो यह है कि हम नामस्मरण ही एकमात्र उपाय है। हमें नामस्मरणमें उसके फंदेसे छूटकर भगवान्के पास कैसे पहुँचें? इस तल्लीन होना चाहिये और शरीरका विस्मरण होना प्रश्नका उत्तर एक ही है—उसका नामस्मरण करना। चाहिये। देहबुद्धिका विस्मरण होकर नामस्मरण करनेका नामस्मरणके द्वारा ही मायाके फंदेसे छूटकर भगवान्के मतलब है निर्गुण होना। यदि भगवान् कंजूस है तो नाम-समीप पहुँच पायेंगे। जैसे व्यक्तिके बिना छायाका भक्तिका दान देनेमें है। अत: उसे मनाना चाहिये और अस्तित्व नहीं हो सकता, वैसे ही मायाका स्वतन्त्र उससे यही माँगा जाय कि नामस्मरणके प्रति प्रेमनिर्माण अस्तित्व नहीं है। उसी प्रकार उसकी अपनी कोई शक्ति हो। भगवान् अगर सम्भव हुआ तो सब कुछ दे देगा। लेकिन नामस्मरणके प्रति प्रेम शायद ही देगा। इसलिये भी नहीं है; क्योंकि उसकी हलचल व्यक्तिकी हलचलके अनुसार ही होती है। भले व्यक्ति दिखायी न दे, लेकिन हमें माँगना चाहिये केवल प्रेम। प्रभु रामके प्रति निरन्तर अनुसन्धान रखा जाय और आनन्दसे जीवन व्यतीत करें। उसकी छाया दिखायी देती है। उसी तरह मायाके अस्तित्वका हमें भान होता है। मायाका अधिकार नाम ही सत्स्वरूप है ईश्वरपर नहीं है। यदि कोई व्यक्ति पूर्व दिशामें चल रहा नाम रूपकी अपेक्षा निश्चित श्रेष्ठ है। उसके हो तो उसकी छाया भी उसके पीछेसे उसी दिशामें कारण रूपका ध्यान मनमें साकार नहीं हो पाया तो भी जायगी। यदि छाया चाहती हो कि मैं दिशामें बदल करके नाम छोडना नहीं चाहिये। भविष्यमें रूप अपने-आप दूसरी दिशामें अर्थात् पश्चिम दिशामें जाऊँगी तो वह प्रकट होगा। रूप जड और दृश्य है, इसलिये उत्पत्ति, सम्भव नहीं होगा। यदि वह व्यक्ति पश्चिम दिशामें स्थिति और विनाश, बढ़ना और घटना, जगह व्यापना जायगा तभी छायाको पश्चिम दिशामें जाना सम्भव होगा। और जगह बदलना, कालानुसार फरक होना आदि बन्धन उसे है। किंतु नाम दृश्यके परे है। नाम सूक्ष्म है, इसका मतलब है माया भगवान्के अधीन है। सारा विश्व ही मायारूप है। अर्थात् वह परमेश्वरकी छाया है। इसका इसलिये उसे उत्पत्ति, विनाश, वृद्धि और क्षय, देशकालकी अर्थ यह हुआ कि विश्वका आधार परमेश्वर ही है। सीमा आदि कोई विकार नहीं है। नाम सत्स्वरूप है। अब सवाल यह है कि माया के फंदेसे छूटकर नाम रूपसे अधिक व्यापक है। जो वस्तु अधिक व्यापक ईश्वरतक कैसे पहुँचे ? मानो कि किसी व्यक्तिको बहुत होती है, जिसका विस्तार अधिक होता है, उसमें शक्ति

भी अधिक होती है। जिसमें अधिक शक्ति है, वह चीज रूप बनता है, तब ऐसा हमें ज्ञान होता है कि यह अधिक स्वाधीन होती है। जो वस्तु अधिक स्वतन्त्र होती प्रकृतिका सौन्दर्य है। इसका मतलब हुआ कि मनुष्यकी

िभाग ९४

प्रवृत्ति अनेकत्वमें एकत्व ढूँढ्नेकी है। इस विश्वमें बहुत

विविधता है। विभिन्न प्रकारके पत्थर, कीडे, पक्षी, प्राणी

कहते हैं। इसीको ॐकार कहते हैं। ॐकारसे ही

सुष्टिका निर्माण हुआ। ॐकार परमात्माका ही रूप है।

[संग्राहक — श्रीगोविन्द सीतारामजी गोखले]

शक्तिमान्, अधिक स्वतन्त्र, अधिक बन्धनमुक्त होता है। हम देखते हैं। इन सबके नाम अलग-अलग हैं, फिर हम यह जान लेंगे कि ज्ञान प्राप्त होनेकी क्रिया भी इन सबमें अस्तित्व है, चाहे वे प्राणी हों, सजीव हों किस प्रकार चलती है ? किसी एक टीलेपर खडे होकर या निर्जीव हों। इतना ही नहीं, आनन्दकी भावना है फिर हमने प्रकृतिका सुन्दर दृश्य देखा। दृश्य देखनेकी क्रियामें भी उसका अस्तित्व है। इसी अस्तित्वके गुणको ही नाम

कौन-कौन-सी बातें घटती हैं? पहले आँखोंके भीतर प्रकाशिकरण पहुँचे। बाह्य पदार्थींका ज्ञान होनेके लिये प्रथम साधन इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियोंके द्वारा भीतर जो परिणाम होते हैं, उन्हें मन वस्तुका रूप देता है। जब

है, उसे सीमाएँ नहीं होतीं, उसे बन्धन कम होते हैं।

अत: नाम रूपकी अपेक्षा अधिक व्यापक, अधिक

अर्थात् नाम यानी सत्। इसीलिये नाम सुष्टिका प्रारम्भ हुआ, तब भी था, अब भी है और भविष्यमें भी रहेगा। वस्तुका स्वरूप दिखायी देता है, तब बुद्धि उसका यथार्थ सुष्टिका लय होगा तो भी नाम बचेगा ही। नाम यानी ज्ञान करा देती है। लेकिन वृद्धिका कार्य यहीं नहीं

ईश्वर। नामसे ही अनन्त रूप बनते हैं और उसीमें विलीन होते हैं। रूप नामसे अलग हो ही नहीं सकता। नाम रूपको व्याप्त करके भी शेष बचता है।

रुकता। हम टीलेपर पहुँचते हैं और सृष्टिका अवलोकन

करते हैं तब हमें वृक्ष, लताएँ, घर, बाग, मनुष्य, पक्षी, तालाब आदि दिखायी देते हैं। इन सबका एक विशाल

छः महीनेमें ब्रह्मप्राप्तिके साधन

भाण्डमना इव। एकाग्रं चिन्तयेन्नित्यं योगान्नोद्वेजयेन्मनः॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं कोष्ठे सन्नियन्तु चलं मनः।तं च मुक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्ततः॥ येनोपायेन शक्येत

देवतायतनानि च। शुन्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत्॥ शुन्या गिरिगुहाश्चैव नाभिष्वजेत्परं वाचा कर्मणा मनसापि वा। उपेक्षको यताहारो लब्धालब्धे समो भवेत्।।

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमपवादयेत् । समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥

न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत्। समः सर्वेषु भूतेषु सधर्मा मातरिश्वनः॥ एवं स्वस्थात्मनः साधोः सर्वत्र समद्शिनः। षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥

(महा० शान्ति० २४०। २६—३२) धनमें जिसका मन होता है। वह जैसे धनकी चिन्ता करता है, वैसे ही योगी इन्द्रियोंको नियममें रख एकाग्र हो

आत्माका चिन्तन करे, योगसे मनको उद्विग्न न होने दे। जिन साधनोंसे चंचल मन वशमें हो सकता हो, उनका सेवन

करे, और उन साधनोंसे हटे नहीं। योगी मनको एकाग्र करके पर्वतोंकी निर्जन गुफाओंमें, देवताओंके मन्दिरोंमें अथवा शुन्य गृहोंमें रहनेका उपक्रम करे। योगी मन, वाणी तथा कार्यसे किसीका भी संग न करे; क्योंकि वस्तुओंका संग्रह

अथवा संग योगियोंको दु:खदायी हो जाता है। सबकी ओरसे उपेक्षा रखे, नियमित रीतिसे आहार करे, लाभसे प्रसन्न न हो, और हानिसे उदास भी न हो। निन्दा करनेवाले और प्रणाम करनेवालेपर समानदृष्टि रखे, किसीकी भलाई-

बुराईका चिन्तन न करे, लाभ होनेपर हर्षित न हो और हानि होनेपर चिन्ता भी न करे। सब प्राणियोंपर समभाव रखे

और वायुके समान कहीं आसक्त न हो। इस प्रकार मनको स्वस्थ रखनेवाला साधनामें लगा हुआ, सर्वत्र समदृष्टि

रखनेवाला छ: महीनेतक नित्य नियममें रहनेवाला पुरुष ओंकारस्वरूप ब्रह्मका दर्शन करके ब्रह्मरूप हो जाता है।

शरीर और संसारको अस्थिर मानो संख्या ४] शरीर और संसारको अस्थिर मानो साधकोंके प्रति-(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) यह सबके अनुभवकी बात है कि यह सब-का-भोगें अर्थात् संग्रह करनेकी और सुख भोगनेकी सब दृश्य अदृश्य हो रहा है। यह जो संसार दीख रहा आसक्ति। भगवान् कहते हैं— है, यह मिट रहा है। एक क्षण भी इसमें स्थिरता नहीं भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्। है। इसमें स्थिरता माननेसे ही राग-द्वेषादि द्वन्द्व होते हैं— व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥ इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन (गीता २।४४) भारत। भोग और संग्रहकी इच्छा होती है कि सुख भोग सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप॥ लूँ, संग्रह कर लूँ। इसी कारण एक परमात्माकी तरफ (गीता ७। २७) इच्छा (राग) और द्वेषसे ही सब द्वन्द्व पैदा होते ही चलना है। यह निश्चय नहीं होता। इस निश्चयमें हैं। इन द्वन्द्वोंसे मोहित होकर यह जितना भी प्राणी-जितनी शक्ति है, उतनी किसी साधनमें नहीं है। नामजप, समुदाय है, यह वास्तविकताको नहीं जानता। इस द्वन्द्वसे कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय, तप, तीर्थ, व्रत आदि साधन ही सम्मोह पैदा होता है। तो इस कारण वह तत्त्वको बड़े श्रेष्ठ हैं। वास्तवमें यह बात ठीक है। परन्तु जान नहीं सकता। अत: राग-द्वेष, हर्ष-शोक पैदा होते भीतरकी जो निश्चयात्मिका बुद्धि है, वह यथार्थ ठीक हैं—नश्वर शरीर और संसारको स्थिर माननेसे 'है' ऐसा होती है। उसका बहुत ज्यादा मूल्य होता है। भगवान्ने माननेसे। यह सबके अनुभवकी बात है कि ये स्थिर नहीं कहा है-हैं। सन्तोंने कहा है— अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ काची काया मन अथिर, थिर-थिर काम करंत। ज्यों-ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों-त्यों काल हसंत॥ (गीता ९।३०) साधन करनेवाला सदाचारी होता है। पर सुदुराचारी— युधिष्ठिरजी महाराजने कहा है-अहन्यहिन भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्। सांगोपांग दुराचारी भी अन्यका भजन न करके, अन्यका शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥ आश्रय न रखकर भजन करता है, तो उसे साधु मान लेना चाहिये—'साधुरेव स मन्तव्यः' यह भगवान्की आज्ञा (महा० वन० १३। ११६) इससे बढ़कर क्या आश्चर्य होगा कि सब-के-है। जब भगवान् उसे सुदुराचारी स्वीकार करते हैं, तो सब अदर्शनमें जा रहे हैं, यमराजके घर जा रहे हैं, उसे साधु कैसे मानें? तो कहा—'सम्यग्व्यवसितो हि और इच्छा करते हैं स्थिरताकी! जो स्थिरता कभी सः' अर्थात् उसने निश्चय पक्का कर लिया कि केवल रहती नहीं, और अभी भी स्थिरता है नहीं, और परमात्माकी तरफ ही चलना है। यह सम्पूर्ण साधनोंकी कभी भी स्थिरता रहेगी नहीं। यहाँ तो केवल सेवा मूलभूत साधना है। इससे अपने-आप सब ठीक होगा। करनेके लिये आना हुआ है। शरीरसे, मनसे, वाणीसे, जैसे किसीके मनमें निश्चय हो जाय कि मुझे बदरीनारायण पदार्थोंसे, योग्यतासे, पदसे, अधिकारसे औरोंकी सेवा जाना है, तो कैसे जाना है? रास्ता कैसा है? कितना बन जाय, औरोंको सुख हो जाय, औरोंका भला हो है ? आदि बातें स्वतः पैदा होंगी। स्वतः जिज्ञासा पैदा जाय, औरोंका हित हो जाय-यह काम हमें करना होगी। खोज करनेपर बतानेवाले और सहायता करनेवाले * HipdaismapisonropSether https://dar.goldharmandMADFIWETLEDVERAY Aninash/Shr

भाग ९४ चलनेका सामान भी मिलेगा और उपाय भी कर लेगा। है। हम अचल हैं * और यह सब चल है। चलके साथ सब कुछ हो जायगा। तो एक निश्चय हो जानेसे सब मिलनेसे अपनेमें अस्थिरता मालूम देती है। स्थिर होते काम बन जाता है। ऐसा निश्चय कब होता है? जब हुए भी अपनी स्थिरताका अनुभव नहीं होता। जैसे, हम यहाँकी अस्थिरता देखता है। परंतु भूलसे स्थिरता देखकर गाड़ीमें जा रहे हैं और गाड़ी किसी छोटे स्टेशनपर ठहर यहाँ ही डेरा लगा देता है कि बस, यहाँ ही रहना है। गयी; क्योंकि सामनेसे दूसरी गाड़ी आ रही है, वह गाड़ी पर अभीतक जितने आये, कोई यहाँ नहीं रहा। अच्छे-आकर दूसरी लाइनमें ठहर जाती है, हम उस गाड़ीकी अच्छे महात्मा, पीर, औलिया, सन्त हो गये; वे भी चले तरफ देखते हैं, वह गाड़ी चल पड़ती है, तो मालूम होता गये। भगवान्ने भी अवतार लिये, पर हमारे इस है कि हम चल रहे हैं, जबकि हमारी गाडी स्थिर है, मृत्युलोकके रिवाजको नहीं तोड़ा। वे भी चले गये। यहाँ ऐसे ही यह शरीर-संसाररूपी गाड़ी चल रही है और रहनेकी रिवाज नहीं है, इस वास्ते यह जाने-ही जानेवाला उधर दृष्टि रहनेसे हम देखते हैं कि हम जवान हो रहे है। अगर यह ठीक जागृति रहे, तो बहुत ही लाभ है। हैं, हम बूढ़े हो रहे हैं आदि। ऐसा दीखता है कि हम जैसे कार्यालयमें काम करने जाते हैं, तो भीतर यह जा रहे हैं, पर जा रहा है शरीर। इस प्रकार शरीर-बात बैठी रहती है कि कार्य समाप्त होते ही घर चल संसारको तो स्थिर मान लिया और अपनेको जानेवाला देंगे। इस बातको याद नहीं करते, इसका चिन्तन नहीं मान लिया। शरीर-संसारको स्थिर माननेसे द्वन्द्व पैदा होते करते, इसका जप नहीं करते। परंतु बात भीतर जमी हैं, और द्वन्द्वोंसे मोह पैदा होता है। इस वास्ते जो रहती है। इस तरह जो संसारमें रहनेकी बात है, वह द्वन्द्वमोहसे रहित होते हैं, वे दृढ्व्रती होकर भगवान्का बिलकुल उलटी बात है, और यहाँ न रहनेकी बात भजन करते हैं-बिलकुल सही बात है। सही बातको मान लें। इसमें कुछ 'ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ्व्रताः॥' करना नहीं पड़ता। इसे निर्विकल्परूपसे मान लेनेपर फिर (गीता ७। २८) यह विचारका विषय नहीं रहता। इस बातको मान लें, राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसार-तो बड़े भारी लाभकी बात है। ये जितने साधन हैं, सब बन्धनसे मुक्त हो जाता है— इसके ऊपर आधारित हैं। यह सबकी आधारशिला 'निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥' (नींव) है। आस्तिक हो या नास्तिक, कोई क्यों न हो, (गीता ५।३) 'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-यह सबके लिये सही बात है और ठीक अनुभवकी बात है। ऐसा नहीं कि शास्त्रोंमें लिखा है, मान लो; तो र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥' जिसकी श्रद्धा होगी, वह मान लेगा और जिसकी श्रद्धा (गीता १५।५) नहीं होगी, वह नहीं मानेगा। इसमें तो श्रद्धाकी भी इसलिये भगवान् आज्ञा देते हैं कि तुम निर्द्वन्द्व हो जरूरत नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष और सीधी बात है कि जाओ— त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। हमारा बालकपना चला गया। उसे ढूँढें, तो वह मिलता नहीं। ऐसा ही प्रवाह अभी भी चल रहा है। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥ एक परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही हमारा आना (गीता २।४५) हम निर्द्वन्द्व कब होंगे ? जब शरीर-संसारको अस्थिर हुआ है। उसीको प्राप्त करना है। पर यह तब होगा, जब इस संसारको अप्राप्त मानें। संसार प्राप्त नहीं हुआ मानेंगे तब। अस्थिर माननेसे फिर राग-द्वेष नहीं होंगे। * नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ (गीता २। २४)

आनन्दभूमि वृन्दावन एवं कृष्णका वेण्गीत संख्या ४] आनन्दभूमि वृन्दावन एवं कृष्णका वेणुगीत (पद्मश्री प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र) नन्दनन्दन कृष्ण एवं वृषभानुलली राधाकी कुलकानि जौ आपनि राख्यौ चहौ, दै रहौ अँगुरी दोउ कानन में॥ प्रणयलीलाओंने वृन्दावनको 'आनन्दभूमि' बना दिया। परंतु इस वंशीध्वनिसे पिण्ड कैसे छूटे? नन्दनन्दन कुरुक्षेत्रने भारतको धर्मभूमि, काशीने मुक्तिभूमि एवं कृष्ण प्रतिक्षण तो वंशी बजाते नहीं, कभी-कभी वृन्दावनने उसे आनन्दभूमि बनाया—इसमें कोई संशय एकान्तमें गोचारणवेलामें वंशी बजाते हैं। परंतु गोपियाँ नहीं। यद्यपि श्रीमद्भागवतके प्रमाणानुसार गोकुल एवं तो उस वंशीध्वनिमें इतनी समरस हैं, इतनी दत्तचित्त हैं, वृन्दावनमें अपनी भुवनमोहिनी लीलाएँ सम्पन्न करनेवाले इतनी निमग्न हैं कि उन्हें वह प्रतिक्षण बजती-सी ही कृष्ण मात्र ग्यारह वर्ष पाँच महीनेके थे। वयकी दृष्टिसे प्रतीत होती है। वे उस हृदयावर्जक मुरलीध्वनिको प्रत्यक्ष उन्हें नायक नहीं माना जा सकता। तथापि उनके प्रति सुनती हैं। अब यह तो एक अद्भुत समस्या है। यह तो गोपवधूटियोंके असांसारिक विलक्षण दुर्वार आकर्षणको वंशीरव नहीं, योगियोंका अनहद नाद हो गया। सम्पूर्ण जीवन-चेतना ही वंशीध्वनिमय है। महाकवि 'घनानन्द' भी नकारा नहीं जा सकता; क्योंकि ऐसा प्रेम सम्भव है, जो रतिभावके समस्त मानकोंको झुठा सिद्ध कर दे। ने भी उस नित्य वंशीरवको सुना है— जिन श्रीकृष्णके प्रेमरसमें निमज्जित व्रजांगनाएँ मँडराति रहे धुनि कानन में अजकौ अपराजिबौई सी करें, आत्मविस्मृत हो उठी हैं, उन ब्रजचन्द्रसे मिलनेकी ब्रजमोहन सोहन जोहन के अभिलाषि समाजबौई सी करैं। उत्कण्ठा, त्वरा, विवशता एवं असहायताका क्या 'घन आनँद' नाद अखण्डित सौं, सरसै सुरसाजिबौई सी करैं। कहना ? कितनी अधीरता एवं व्याकुलता है इस चिरौरी-कितकौं यह बैरिनि बाँसुरिया बिनु बाजेउ बाजिबौई सी करै।। विनतीमें— इस वंशीध्वनिने ही वृन्दावनमें एक नया समाज स्थापित कर रखा है। यह समाज केवल व्रजांगनाओं एवं सिख! तो पहँ जाचन आई हूँ मैं उपकार के मोहि जियाविह तू, उनके सम्पूर्ण जीवन-सूत्रधार कृष्णका है। इस समाजका तोहिं तात की सौं, तोहिं मात की सौं यह बात न काहूँ जनाविह तू। आचरण विलक्षण है, इसकी मर्यादाएँ विलक्षण हैं। इस तुव चेरी हों होऊँगी 'दास' सदा ठकुरायन मेरी कहावहि तू, समाजमें जो भी, शरीर या मनसे प्रवेश करता है, वही किट फन्द कछू मोहिं चार जनी सजनी! ब्रजचन्द मिलाविह तू॥ समूचे ब्रह्माण्डका चैतन्यरस है यह वंशीरव! जब तद्रुप हो जाता है। कृष्णमयता ही इस समाजका सत्य माधव वंशीवादन करते हैं तो समूचा ब्रह्माण्ड उनकी है। यहाँ सब कुछ कृष्णमय है। अण्डज, पिण्डज, वंशीध्वनिमें समा जाता है। सारी प्रकृति निष्क्रिय हो स्वेदज तथा उद्भिज्ज—सब कृष्णरूप हैं। कृष्णचेतनाके अतिरिक्त यहाँ और कोई सत्ता है ही नहीं। व्रजांगनाओंको उठती है। दूध पीते गायोंके बछड़े, बहती हुई यमुना, वातान्दोलित कदम्ब-द्रुम उतनी अवधिके लिये स्वयमेव यह ज्ञात नहीं कि कृष्ण उनके क्या लगते हैं? चित्रलिखितसे हो उठते हैं। मुकुन्द माधवकी वंशीध्विनको वे कृष्णके बिना क्यों नहीं जी पातीं? भला कौन चुनौती दे सकता है ? हाँ, एक ही उपाय है सिख! तैंह हुती निसि देखत ही जिनपै वै भई हीं निछाविरयाँ उसके ऐन्द्रजालिक प्रभावसे बचनेका कि उसे सुनो ही जिन पानि गह्यो हुतो मेरो जबै सब गाव उठी ब्रज डावरियाँ। नहीं। शायद ऐसा करनेसे त्राण मिल जाय। अँसुवा भरि आवत मेरो अजौ सुमिरे उनकी पद-पाँवरियाँ सिख! को हैं, हमारे वे कौन लगें, जिनके सँग खेलिहीं भाँवरियाँ॥ सुनती हौ कहा, भजि जाउ घरै, बिंधि जाहुगी नैन के बानन में यह बंसी 'नेवाज' भरी बिष सों, बगरावित है बिस प्रानन में। अपने काव्यसंसारका स्रष्टा (ब्रह्मा) तो कवि स्वयं ही होता है। ब्रह्मा अपनी सृष्टिमें स्वतन्त्र नहीं; क्योंकि अबही सुधि भूली हौ मेरी भट्ट! भभरौ जिन मीठी-सी तानन में

भाग ९४ उसे प्रत्येक जीवका निर्माण उसके (अच्छे-बुरे) कर्मविपाकके इन लीलाओंके चिरपिपासु दर्शक किसी एक रसके नहीं अनुसार ही करना पड़ता है। परंतु कविकी सृष्टि हैं। किसीको कृष्णकी वात्सला-दिद्क्षा है, तो किसीको 'अनन्यपरतन्त्र' है। वह अपनी सर्जना अपनी रुचिके शौर्यपराक्रमकी दिद्क्षा। कोई उनका रौद्ररूप देखना अनुसार ही करता है— यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते। चाहता है तो कोई अद्भुत। कोई उन्हें करुणामें डूबा देखना प्रेमका संसार भी कवि अपनी अभिरुचिके ही अनुसार चाहता है तो कोई परम शान्त स्वरूप। भगवान् भक्तप्रणयी रचता है। कविकी सृष्टिमें प्रेम 'प्रेम' है। वह वैध-अवैध हैं। यशोदा, गोपीजन, अक्रूर, कंस, दुर्योधन, अर्जुन, भीष्म नहीं होता, उचित-अनुचित नहीं होता है। रीतिकालीन तथा व्याध—सबको वह अपनी 'नवरसरुचिरा' लीला हिन्दी कवियोंने इस सन्दर्भमें अद्भुत परिकल्पनाएँ की हैं, दिखाते हैं, वृन्दावनमें तथा अन्यत्र भी। जो समूची विश्वकविताका शृंगार हैं। आश्चर्य होता है नन्दनन्दन कृष्णका वंशीवादन भारतीय संस्कृतिका सहृदय कवियोंकी उन अद्भृत काल्पनिक उड़ानों एवं प्राणतत्त्व है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका सम्पूर्ण जीवन उत्प्रेक्षाओंको पढ़कर, अनुभवकर। एक मालिनके घरमें यदि उनके 'कराल शरसन्धानों' से रेखांकित है तो आग लग गयी है। परंतु घर जलनेकी उतनी चिन्ता या लीलापुरुषोत्तम कृष्णका उनके भुवनमोहन वंशीवादनसे। 'हाय-हाय' मालिनको नहीं, जितनी कि किसी औरको अपनी अधरसुधासे वेणुरन्ध्रोंको पूरित करते कृष्ण जब हो रही है। आखिर क्यों? इसलिये कि अब 'एकान्त-वृन्दावनमें गोपवृन्दोंके साथ प्रविष्ट होते थे तो समस्त मिलन' कहाँ हो पायेगा? यह मालिनका घर ही नहीं, प्रेमी भुवनोंकी चेतना, वंशीवादनकी अवधितक मानो स्थगित एवं प्रेमिकाका निर्विघ्न संकेतस्थान भी तो था। मालिनकी हो उठती थी। निनादित वंशीके विलक्षण गायनको बजाय उस ग्वालिनकी व्यथा देखें— सुनकर, विमानपर संचरण करतीं देवांगनाओंके मणिबन्ध 'दासजू' बाकी तौ द्वार की सूनी कुटी जरै, यातें परै दुख थोरे स्वतः शिथिल हो उठते थे। कबरीबन्धोंमें गुँथे फूल, भारी दुखारी अटारी चढ़ी यहै रोवै, हनै छतियाँ, सिर फोरे। स्वरवेदनाके तापसे कुम्हलाकर गिर जाते थे और वे अपनी हाय भरे, कहै लोगनि देखि, अरे निरदै कोउ पानी लै दौरे सुध-बुधतक खो बैठती थीं, देववनिताओंकी उस दशाका आगि लगी लखि मालिन के, लगी आगि है ग्वालिन के उर और।। वर्णन करते हुए महर्षि कृष्णद्वैपायन लिखते हैं— परंतु उस व्रजांगनाके हृदयानन्दका क्या कहना, कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्। जिसे नन्दनन्दनसे मिलनेका 'सर्वार्थसिद्धियोग' स्वतः देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः॥ प्राप्त होने जा रहा है। सारा घर जा रहा है सोमवती देवताओं तथा मनुष्योंकी बात छोड़िये। पशु-पक्षी अमावस्या नहाने, अकेली वधूको घरमें छोड़कर। परंतु एवं नदी-पर्वत भी कृष्णके वंशीनाद-माधुर्यके सम्मोहनसे वधू असहाय कहाँ? किशन कन्हाई जो घरकी देख-अछूते नहीं बचे थे। वंशीरवसे आकृष्ट चेतनावाली रेखमें नियुक्त हैं, महाकवि 'दास' 'मुदितविदग्धा' हिरनियाँ अपने 'प्रणयावलोकन' मात्रसे मानो कृष्णकी नायिकाका चित्रण करते हैं-पूजा करने लगती थीं। वंशीके बजते ही उन्मद मयूर नृत्यरत हो उठते थे और गायें उत्तमित कर्णपुटोंसे पीने आवती सोमवती सब संग ही गंग-नहान कियौ चहती हैं लगती थीं कृष्णके मुख-कमलसे निर्गत वेणुगीतामृतको! गेहु को भार जसोमतिवारे को आजुहि सौंपि दियौ चहती हैं। उनके बछड़े स्तनसे निस्यन्दित दूध पीते-पीते स्तम्भित-मोहि अकेली इहाँ तजि दौसजू जीवन लाहु लियौ चहती हैं से हो उठते थे! कितना विचित्र प्रतीत होता है यह कथन आली कहा कहाँ या घर की सिगरी मोहि खाय जियौ चहती हैं।। कि उस वंशीरवकी मादकतामें डूबी निदयाँ भी आवर्तींके यही आनन्दभूमि वृन्दावन कृष्णकी विविध लीलाओंकी स्थली है। ये लीलाएँ किसी एक रसकी नहीं हैं, क्योंकि माध्यमसे अपना मनोभव-भग्नवेश प्रदर्शित करती हुई

संख्या ४] आनन्दभूमि वृन्दावन ।	एवं कृष्णका वेणुगीत २१
\$	************************************
ऊर्मिरूपी भुजाओंसे मानो नन्दनन्दनके चरणकमलोंमें	कभी यमलार्जुन-उद्धार। वस्तुत: कृष्णका सम्पूर्ण जीवन-
कमल-पुष्पोंका नैवेद्य चढ़ाया करती थीं—	चक्र ही विविध भुवनमोहिनी लीलाओंका समवाय है।
नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः।	यद्यपि भगवान् कृष्णकी लीलाएँ अत्यन्त गूढ़ हैं।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहारा:॥	वे सामान्य मानवकी समझसे परे हैं। यहाँतक कि उन
(श्रीमद्भागवत १०। २१। १५)	लीलाओंका मर्म उनके ही जन्मदाता नन्द-यशोदा नहीं
भगवान् विष्णुके प्रधान दश (अथवा कुल २४)	समझ पाते थे। पूतना अथवा तृणावर्तके प्रसंगमें भी माता
अवतारोंमें चौबीसवें त्रेतायुग एवं द्वापरकी सन्धि-वेलामें	यशोदाने बस इतना ही समझा कि आँधी-बवण्डरमें उड़ा
दशरथनन्दन रामका एवं अट्ठाईसवें द्वापरयुगके अन्तिम	हुआ उनका बच्चा, प्रभुकृपासे अक्षत बच गया। उन्हें
चरणमें नन्दनन्दन कृष्णका अवतरण हुआ। इन दोनों	क्या पता कि उस अबोध-शैशवमें भी भगवान् पूरी
अवतारोंका उद्देश्य एक ही था—पृथ्वीको पापभारसे मुक्त	तन्मयताके साथ असुरोंका वध कर रहे हैं। उस युगमें
करना। त्रेतामें यह पापभार रावणसे तथा द्वापरमें आततायी	भी भगवान् कृष्णके 'परमेश्वरत्व'का साक्षात् बोध
कंससे उत्पन्न होकर 'दुर्वह' बन गया था, अतएव	भगवान् व्यास, पितामह भीष्म एवं उद्धव-सरीखे गिने-
साधुजनोंके परित्राण, दुष्कर्मियोंके विनाश तथा धर्मकी	चुने महाभागवतोंको ही था।
प्रतिष्ठापनाके लिये करुणा-वरुणालय परमेश्वरको	भगवान् रामने मर्यादाओंकी सृष्टि एवं रक्षाके लिये
धराधामपर आना पड़ा।	'अमोघ शरासन'का आश्रय लिया। परंतु कृष्णने
दशरथनन्दन मर्यादापुरुष हैं। मर्यादाका अर्थ है—	लोकोन्माथी लीलाओंकी सृष्टि एवं रक्षाके लिये 'वंशी'
सीमाबद्धता (मर्यां सीमाम् आदत्ते इति मर्यादा) और	धारण की। वंशी उनके सम्मोहक व्यक्तित्वका अविच्छेद्य
सीमाबद्ध प्राणी लीला नहीं कर सकता; क्योंकि लीला-	अंग थी। पीताम्बर धारण किये, वैजयन्ती माला पहने,
की सृष्टिमें पद-पदपर मर्यादाएँ छोड़नी पड़ती हैं। यही	कानोंपर कर्णिकार-पुष्प स्थापित किये, मयूरपिच्छ-
कारण है कि मर्यादाओंके निर्वाहमात्रमें आद्यन्त केन्द्रित	भूषित जटाजूटवाले नन्दनन्दन कृष्णका वंशी बजाते हुए
राम जीवनभर कोई लीला नहीं कर सके। मर्यादामें	वृन्दारण्यमें प्रवेश करना—द्वापरयुगका ही नहीं अनाद्यन्त
जकड़े राम जब अपनी और लक्ष्मणकी दयनीय दशा	कालावधिकी एक अविस्मरणीय, शाश्वत एवं चिरन्तन
देखकर प्राकृत जनकी तरह विषण्ण होते हैं तब	उपलब्धि है।
विभीषण उन्हें स्मरण दिलाते हैं उनके महाविष्णुत्वका!	श्रीमद्भागवत–महापुराणका जीवन्त वेणुवादन–सन्दर्भ
इस स्मृतिके अनन्तर ही पक्षिराज गरुड़द्वारा नागपाश	ही रीतिकालीन हिन्दी-कविताका रसायन बनकर उभरा
समुच्छिन्न किया जाता है, परंतु कृष्ण लीलापुरुषोत्तम हैं।	है। कृष्णलीलाका गान करनेवाले अष्टछापके कवियोंके
जैसे ऐन्द्रजालिक प्रतिक्षण अपनी मायिक–शक्तिकी	साथ ही साथ उस युगके अन्यान्य सभी सहृदय कवियोंने
अनुभूतिसे प्रबुद्ध बना रहता है, वैसे ही कृष्णको प्रतिक्षण	कृष्णके वेणुवादनका विविध भावभंगिमाके साथ वर्णन
अपने परमेश्वरत्वकी, अपने अलौकिकत्वकी प्रत्यग्र	किया। ये वर्णन अत्यन्त सरस, मधुर तथा प्रकरणवक्रतासे
अनुभूति है। उनके व्यक्तित्वमें कर्तृत्वका उन्मेष प्रतिक्षण	ओतप्रोत हैं। शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें जब महारासेच्छुक
होता रहता है। परिणामत: यह सुनियोजित रूपसे	कृष्णने यमुनातटपर वेणुवादन प्रारम्भ किया तो
प्रतिदिन कोई-न-कोई विलक्षण लीला रमाते रहते हैं।	'कृष्णगृहीतमानसा' सारी गोपियाँ बरबस खिंची चली
कभी माखनचोरी तो कभी कालियदमन, कभी चीरहरण	आर्यो। किस स्थितिमें आर्यो! इसका अद्भुत प्रमाण
तो Hipqhisperporp इक्कारडातिक अपिकहर् कुष्ठ क्षिप्रकारक प्रमुख्य का Avinash/Sha	

भाग ९४ साकार कर देती है गोपियोंकी भागमभागको। दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः। कृष्णके प्रति गोपवध्टियोंकी आसक्तिकी व्याख्या पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः॥ कर पाना कठिन है। भगवान् कृष्णद्वैपायन भी 'इदिमत्थम्' परिवेषयन्त्यस्तिद्धत्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः। कह पानेमें स्वयंको असमर्थ पाते हैं। साँवरे-सलोने शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिद् श्नन्त्योऽपास्य भोजनम्॥ कृष्ण उन गोपियोंके क्या लगते थे? कुछ नहीं! पुत्र तो लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने। व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः॥ वह वसुदेव-देवकीके थे। पालित पुत्र भी नन्द-यशोदाके 'देव' कवि कहते हैं— थे। परंतु गोपाङ्गनाओंके तो वह न पुत्र थे, न भाई, न ही अन्य कुटुम्बी। बारहवर्षीय कुमार कृष्णके प्रति गनें न कलंक मृदुलंकिनि मयंकमुखी गोपियोंका 'कान्ता भाव' भी सम्भव नहीं। प्रेम तो पंकज परान धाईं भागी निसिपंक मैं। अंकुरित ही होता है, किसी सांसारिक-सम्बन्धसे। परंतु भूषनन भूलि पैन्हे उलटे दुकूल 'देव' कृष्णके साथ उन युवती गोपांगनाओंका कोई सांसारिक खुले भुजमूल प्रतिकूल विधि बंक मैं चूल्हे चढ़े छांड़े, उफनात दूध-भांड़े उन सम्बन्ध नहीं था। यदि इसके बावजूद भी पति-पुत्रवती तथा यौवनकी सुत छांड़े अंक, पति छाड़े परजंक मैं॥ कृष्णकी वंशीके बजते ही सारे ब्रजमण्डलमें उमंगमें डूबी ग्वालिनें उठते-बैठते, सोते-जागते, कोई भी गृहकार्य करते कृष्णप्रेममें ही डूबी रहती थीं तथा कृष्णके कुहराम-सा मच जाता है। प्राणोंको बरबस खींच साथ अपने विलक्षण, अनिर्वचनीय, अनुभवमात्र-संवेद्य लेनेवाली वंशीकी तान गोपियोंको अधीर बना देती है। महाप्रभावी रागाकर्षणके समक्ष, पारिवारिक सम्बन्धजन्य वे विद्युत् गतिसे दौड़ पड़ती हैं, कालिन्दी-तटकी ओर! उन्हें अपने शिथिल वस्त्रों, लड़खड़ाती पदगति तथा राग-प्रपंचको तृणकल्प समझती थीं—तो वह प्रेम निश्चय ही दिव्यकोटिक आर्त प्रेम रहा होगा। वह सात्त्विक प्रणय वंशीवादनकी सही दिशातकका बोध नहीं। कोई किसी अन्यसे न भागनेका प्रयोजन पूछता है, न ही किशन-निश्चय ही भोग एवं वासनाके धरातलसे बहुत ऊपर, कन्हाईका पता-ठिकाना जबिक अभियान सबका समान सांसारिक रागबन्धके शिखरपर आरूढ़ था। है, पीर एक-सी है और कृष्णके प्रति सबका चुम्बकीय श्यामसुन्दरके लोकविलक्षण प्रेममें डूबी गोपाङ्गनाएँ आकर्षण भी एक-सरीखा है। वेणुनादके सम्मोहनमें राग-बोधके उस शिखरतक जा पहुँची थीं—सहज

मतिभ्रम एवं किंकर्तव्यविमुढताकी स्थितितक पहुँची

गोपांगनाओंका परिचय देता है कवि-मुरली सुनत याम कामजुट लीन भईं धाईं धुर लीक सुनि विधी बुधुरनि सौं। पावस न दीसी यह पावस नदी सी फिरैं

उमडी असंगत तरंगित उरनि

लाजकाज सुखसाज बंधन समाज नाँघि निकसी निसंक सकुचै नहीं गुरनि सौं। मीन ज्यों अधीनी गुनकीनी खैंचि लीनी 'देव'

बंसीवार बंशी डारि बंसी के सुरिन सौं॥

'बंसी' शब्दके श्लेष-सौन्दर्यमें पगी यह घनाक्षरी

मार्गसे, जहाँतक योगी-यती भी नहीं पहुँच पाते, जीवनभरकी कठोर साधना एवं तपस्याके बावजूद। गोपियोंके इस विलक्षण अनुरागकी लौकिक अभिव्यक्ति असमंजस ही प्रतीत होती हो, परंतु उसका पारमार्थिक स्वरूप अत्यन्त समंजस भी था और गृढ़ भी। प्रेमकी इस संवेदनशील

भावभूमिको बिना समझे, नन्दनन्दनके वेणुवादनकी ऐन्द्रजालिकताकी व्याख्या नहीं की जा सकती। वंशीनादकी तन्मयताने बेचारी ग्वालिनको विक्षिपताकी सीमातक पहुँचा दिया है। माँको आशंका है कि किसीने

बिटियापर टोना कर दिया है। सासको गन्ध मिलती है बहुके किसी षड्यंत्रकी। यूँ ही, जितने मुँह उतनी बातें!

संख्या ४] आनन्दभूमि वृन्दावना क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	एवं कृष्णका वेणुगीत क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक
परंतु सारे फसादकी तो जड़ है कान्हकी बंसरी!!	लिये जीवन कितना विषम है ? बिना कृष्णदर्शनके रह
आज भटू इक गोपबधू भई बावरी, नैकु न अंग सम्हारै	पाना कठिन है और यदि दर्शनका कोई अवसर ढूँढ़नेसे
माय सुभाय कै टोना सों ढूँढिति, सासु सयानी सयानी पुकारै।	मिल भी गया तो लोग भला जीने देंगे? फिर तो
यों रसखानि घिरौ सिगरौ व्रज, आन को आन उपाय बिचारै	कृष्णरूपरसमाधुरीकी प्यासी गोपियोंको शाश्वत
कोऊ न कान्हा के करते वहि बैरिनि बाँसुरिया गहि जारै॥	आनन्दानुभूतिका एक ही मार्ग दिखायी पड़ता है। वह
है कोई रूपगर्विता नायिका, जो अभी-अभी आयी	यह कि गहन वनमें जाकर कठोर तप किया जाय ताकि
है, ब्रजमण्डलमें! ब्रजाङ्गनाओंका वंशीनाद–सम्मोहन उसकी	वनमाला अथवा वंशीका जन्म मिले। ऐसा होनेसे या तो
 समझमें नहीं आता। यह वंशीनाद भला उसे तो 'टस-से-	नन्दनन्दनके सतत वक्षोविहारका सुख प्राप्त होगा या
मस' करके देख ले! कुछ नहीं होगा! परंतु तभी उस	फिर उनके अधररस-पानका अमृतयोग—
अल्हड़ ग्वालिनको समझाती हैं अनुभवी सखियाँ!!	वयौं इन आँखिन सों निरंसक ह्वै मोहन को तन पानिप कीजै
बातैं बनाय बनाय कहौ कहिये, 'रघुनाथ'की सौंह लरैगी	नेकु निहारे कलंक लगै, यहि गाँव बसे कहो कैसे कै जीजै?
और न कोऊ बची ब्रज में, इक तू ही है नेम-निबाह करैगी।	होत रहै मन यों 'मतिराम' कहूँ वन जाय बड़ो तप कीजै
आए भए दिन चारि इतै अबहीं, सबही कौ कुनाँव धरैगी	ह्वै बनमाल हिये लगिये अरु ह्वै मुरली अधरारस पीजै॥
तान भटू मनमोहन की वह कान परैगी, तौ जान परैगी॥	और अन्तमें मनमोहन कृष्णकी वंशी एवं वंशीनादकी
और सचमुच होता वही है। कृष्ण-रूपकी रसमाधुरीमें	समीक्षा! व्रजाङ्गनाएँ सोचती हैं कि आखिर बाँसुरीमें हमारे
डूबते ही सारा रूपगर्व खो जाता है। ढह जाते हैं	हृदयोंको भेद देनेकी क्षमता आयी कहाँसे? और फिर
निर्बन्धके पर्वत और गल जाता है प्रभावित न होनेका	किशन कन्हाईके अधरामृत-संस्पर्शके बाद भी इस 'मुई'
थोथा अहंकार! फिर तो फूटकर बहने लगता है शरीरपर	वंशीकी धुनमें यह विषम ज्वाल कहाँसे ? तभी उन्हें स्मरण
स्वेदका अक्षय स्रोत और आँखोंमें प्रतिक्षण उतरने लगता	हो आता है, शैशवमें मुकुन्द माधवद्वारा दावानलका पान!
है—सावन-भादो!! ह्वै	उस हृदयस्थ दावाग्निका ही दुष्प्रभाव है कि अधर-रसामृत
परदेशी ग्वालिनकी अकड़ जाती रहती है, बस जाती	भी वंशीनादको मधुर नहीं बना पाता और वह गोपियोंके
है कर्णकुहरोंमें बंशीकी ध्वनि एवं प्राणोंमें वंशीधर। वंशीध्वनि	हृदयोंमें दाहका संचार कर देती है। रही, हृदयको बींध
कर्णरन्ध्रोंसे होती हुई प्राणोंतक पहुँच ही जाती है। ढह	देनेकी बात, तो वह भी असम्भव नहीं! क्योंकि कारणके
जाता है लोकलाजका सुहृद तटबन्ध। घनानन्द कहते हैं—	गुण-दुर्गुण कार्यमें स्वतः संक्रान्त हो उठते हैं। जब पर्वतोंको
हम आपनो सो बहुतेरो पचैं कि बचैं अवलोकनैं एकौ घरी	फोड़कर बाँस उग जाता है तो फिर उसी बाँससे बनी
न रहै बस नैसिक प्रान भिदै छिदै कान ह्वै प्रान सु तीखी खरी।	बाँसुरी हृदयको क्यों न बींध दे ?
'घन आनँद' बौरति दौरति ढौरति ढूँढियो पैयति लाज न री	पान किये हू दवानल के जेहि कौ अधरारस नाहिं दढ़ै री
कित जाहिं, कहा करैं, कैसें भरें यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी॥	ताके लगी मुख सों यह जाय तौ ज्वाल की ताननि क्यों न गढ़ै री।
वेणुनादकी प्रभविष्णुताका क्या कहना ? व्रजाङ्गनाओंके	'गोकुलनाथ'के हाथ बसी है बिसासिनि नाथिबे ही कौ बढ़ै री
लिये यह शाश्वत एवं चिरन्तन है। वंशीध्विन उनके कानोंमें	छेदित या हिये को बँसुरी सिख! पाहन फोरिकै बाँस कढ़ै री॥
निरन्तर मॅंडराती रहती है। वह अखण्ड नाद ही उनकी	बहरहाल, यह तो हुई शास्त्रीय अथवा दार्शनिक
जिजीविषाका माध्यम बन गया है; क्योंकि मधुसूदनकी	तर्क-वितर्ककी बात। सत्य तो यह है कि—'स्वभावो
वंशी बिना बजाये भी, बजती–सी ही रहती है।	दुरतिक्रमः'। किसी भी वस्तुका सहज स्वभाव कभी भी
मनमोहन कृष्णके अनुरागमें डूबी व्रजांगनाओंके	परिवर्तित नहीं होता! तीखापन मिर्चेका नैसर्गिक गुण है

भाग ९४

और माधुर्य शर्कराका। यह गुण शाश्वत है। सज्जनोंकी अमृतकी शीतल फुहारें भी हैं। इस विषजन्य-मूर्च्छामें

संगतिमें भी नृशंसोंकी नृशंसता अक्षुण्ण ही बनी रहती ही जीवनका शाश्वत रसायन भी है, यशोमितके छोरे है। कालभुजंगिनी-सरीखी इस बाँसुरीका भी स्वभाव है, ने विष बगरानेके बहाने सचमुच व्रजरजमें अमृतरस

विषोद्वमन। यह विषोद्गार नन्दनन्दनके चन्द्रमुख-घोल दिया है-

संसर्गसे भी समाप्त नहीं हो पाता। दुध दुह्यो सीरो पत्यो तातो न जमायो कत्यो, सिख जाको है जैसो सुभाव सुनौ वह कोटि उपाय करौ न हिलै जामन दयो सो धर्चा धर्चाई खटाइगो।

कहूँ कूर बसै सत्संगति जाय तौ करता बाकी न नैकुजं निलै॥ आन हाथ, आन पाय सबही के तबहीं तें,

कवि 'गोकुल' जारत है तन को सिगरे व्रजके मन माँरि लिये जबहीं तें रसखानि ताननि सुनाइगो॥ सो सुधानिधि से मुख सो लाग कै विष व्यालिनि बाँसुरिया उगिलै॥ ज्यों ही नर त्यों ही नारी तैसी ये तरुनवारी,

वेणुमुखसे उद्विमत वही विष सम्पूर्ण ब्रजमण्डलमें कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो।

व्याप्त हो उठा है, जिसमें साँस ले रही हैं भाग्यकी जानिये न आली यह छोहरा जसोमित को,

मारी व्रजवधूटियाँ। परंतु इस विषाक्त वातावरणमें ही बाँसुरी बजाइगो कि बिष बगराइगो॥

श्रीनारदजीका अभिमान-भंग बोधकथा—

एक बार श्रीनारदजीके मनमें यह दर्प हुआ कि मेरे समान इस त्रिलोकीमें कोई संगीतज्ञ नहीं। इसी

बीच एक दिन उन्होंने रास्तेमें कुछ दिव्य स्त्री-पुरुषोंको देखा जो घायल पड़े थे और उनके विविध अंग कटे हुए थे। नारदके द्वारा इस स्थितिका कारण पूछनेपर उन दिव्य देव-देवियोंने आर्त स्वरमें निवेदन

किया—'हम सभी राग-रागिनियाँ हैं। पहले हम अंग-प्रत्यंगोंसे पूर्ण थे; पर आजकल नारद नामका एक

संगीतानभिज्ञ व्यक्ति दिन-रात राग-रागिनियोंका अलाप करता चलता है, जिससे हमलोगोंका अंग-भंग हो गया। आप यदि विष्णुलोक जा रहे हों तो कृपया हमारी दुरवस्थाका भगवान् विष्णुसे निवेदन करेंगे और

उनसे प्रार्थना करेंगे कि हमलोगोंको इस कष्टसे शीघ्र वे मुक्त कर दें।' नारदजीने जब अपनी संगीतानभिज्ञताकी बात सुनी, तब वे बड़े दुखी हो गये। जब वे भगवद्धाममें पहुँचे, तो प्रभुने उनका उदास मुखमण्डल देखकर उनकी खिन्नता और उदासीका कारण पूछा। नारदजीने

सारी बात बता दी। भगवान् बोले—'मैं भी इस कलाका मर्मज्ञ कहाँ हूँ। यह तो भगवान् शंकरके वशकी बात है। अतएव उनके कष्ट दूर करनेके लिये शंकरजीसे प्रार्थना करनी चाहिये।'

जब नारदजीने महादेवजीसे सारी बातें कहीं, तब भगवान् भोलेनाथने उत्तर दिया—'मैं ठीक ढंगसे

राग-रागिनियोंका अलाप करूँ तो निःसन्देह वे सभी अंगोंसे पूर्ण हो जायँगी; पर मेरे संगीतका श्रोता कोई उत्तम अधिकारी मिलना चाहिये।' अब नारदजीको और भी क्लेश हुआ कि 'मैं संगीत सुननेका अधिकारी

भी नहीं हूँ।' जो हो, उन्होंने भगवान् शंकरसे ही उत्तम संगीत-श्रोता चुननेकी प्रार्थना की। उन्होंने भगवान्

नारायणका नाम निर्देश किया। प्रभुने भी यह प्रस्ताव मान लिया। संगीत-समारोह आरम्भ हुआ। सभी देव, गन्धर्व तथा राग-रागिनियाँ वहाँ उपस्थित हुईं। महादेवजीके राग अलापते ही उनके अंग पूरे हो गये। नारदजी

साधु-हृदय, परम महात्मा तो हैं ही। अहंकार दूर हो ही चुका था, अब राग-रागिनियोंको पूर्णांग देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। [गर्गसंहिता]

ईश्वरका बोधक शब्द 'प्रणव' (डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन', पी-एच०डी० (आयुर्वेद), डिप्लोमा इन योग) योगशास्त्रमें ईश्वरका वाचक शब्द प्रणव ओम् (ॐ) अन्य कोई स्थिति नहीं है।^१ ईश्वरके गुण-कर्म-स्वभाव है। योगसूत्र (१।२४)-में पतंजलिने कहा है— अनन्त होनेके कारण उसके नाम भी अनन्त हैं, परंतु

र्डश्वरका बोधक शब्द 'प्रणव'

सुविधा है कि 'तस्य वाचकः प्रणवः' (यो०सू० १। २७)। अर्थात् उस ईश्वरको बतलानेवाला प्रणव=ओम् (ॐ) है। प्र+नु+अप् प्रकर्षेण स्त्यत इति प्रणवः, अर्थात् जिस

'प्रणव'कहा जाता है। उस'प्रणव'का स्वरूप है'ओम्'। यह 'ओम्' शब्द 'ओम्'—ध्वनिरूप है। इसलिये इसे 'ओंकार' नामसे प्रकट किया जाता है। संसारकी अन्य भाषाओंमें ओंकारको भिन्न-भिन्न रूपोंमें सम्बोधित किया जाता है, यथा—ग्रीकमें 'ओमेगा', फारसी और अरबीमें **'आमीन'** हिब्रू ओर ख्रिस्तयोंकी प्रार्थनामें **'एमेन'** आदि। प्रणव तथा ओंकार पर्यायवाचक शब्द हैं।

दूसरे शब्दोंमें—'प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽनेनेति

नौति, स्तौतीति वा प्रणव ओङ्कारः' (भोजवृत्ति)।

नम्रतासे स्तुति की जाय, जिसके द्वारा अथवा भक्त

शब्दके द्वारा उत्कृष्टरूपसे स्तुति की जाती है, वह शब्द

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

संख्या ४]

जिसकी उत्तमतासे स्तुति करता है, वह 'प्रणव' कहलाता है। वह 'ओम' ही है। 'ओम' यजुर्वेद (४०।१०)-के अनुसार ईश्वरवाचक ही है। या यूँ कहें कि ईश्वरका मुख्य नाम 'ओम' है। अथर्ववेदमें उसीके द्वारा ईश्वरको पुकारनेका विधान

है। मन्त्रमें कहा है कि सूर्योदयसे पूर्व तथा उषासे भी पूर्व जो परमात्माके नामद्वारा उसका स्मरण करता है, वह **'स्वात्मराज्य'**को प्राप्त कर लेता है अर्थात् मन आदि

अविद्यादि दु:ख,कर्म, उनके परिणाम और आशय अन्य कार्योंकी सिद्धिहेतु 'ओम्' पद-वाच्य परमेश्वरमें ही जिसको छू भी न सके; वह सृष्टिकर्ता, रक्षक और संहर्ता प्रतिष्ठित करना योग्य है। साधक भी निवेदन कर रहा है ईश्वर है। उसीका नाम प्रणव अर्थात् ओम् है। पहलेके कि 'मेरा मन उस 'ओम' में स्थित हो जाय।'^२

जितने ऋषि, महर्षि, सिद्ध हो गये हैं; उन सबका गुरु ईश्वर श्रुतिमें ईश्वरके विविध नाम-रूपोंका पर्यवसान है। उस ईश्वरको हम देख नहीं सकते। जो पदार्थ कभी 'ॐ'में है।कठोपनिषद्(१।२।१५)-में कहा गया है— देखा ही न हो, उसे जानना और भी कठिन है। परंतु इतनी

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाःसि सर्वाणि च यद् वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदः संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।। अर्थात् सभी वेद जिस पदका मनन करते हैं, उस पदको मैं तुमसे संक्षेपमें कहता हूँ — वह 'ॐ' है। इस ॐ

वेदादेश है 'मननशील मन ज्ञानकी प्राप्ति या संसारके

के जपका निर्देश महर्षि पतंजिल भी अपने 'योगदर्शन' के 'तस्य वाचकः प्रणवः'(१।२७) एवं 'तज्जपस्तदर्थ-भावनम्'(१। २८) आदि सूत्रोंसे निर्दिष्ट करते हैं। 'ॐ' साक्षात् परमात्माका ही स्वरूप है। भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१०।१५)-में 'गिरामस्म्येकमक्षरम्'

कहकर इसे सुस्पष्ट किया है। इसी जपयोगकी महत्ताको **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'** से निर्दिष्ट करते हुए वे उसे अपनी विभूति बतलाते हैं। अ+उ+म्, इन तीन अक्षरोंका बना हुआ ॐ है। इनमें ऋग्वेदके जितने मन्त्र हैं, सबका सार 'अ' में ले

लिया गया है। यजुर्वेदका 'उ' में और सामवेदका 'म' में।

इस प्रकार अ+उ+म् व्याकरणके नियमानुसार मिलकर एक अक्षर 'ॐ' बनकर अपने महत्त्वसे परब्रह्मका प्रतिपादक है। इसमें सबसे प्रथम महर्षि मनुका वचन देखिये-**'एकाक्षरं परं ब्रह्म'** (ॐ ही परब्रह्म है)। कठोपनिषद् (१।२।१६)-में एक (ॐ) अक्षरके महत्त्वमें कहा है—

एतद्भ्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्भ्येवाक्षरं परम्।

एतद्भ्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥ 'ॐ' ही अक्षर कभी नाश न होनेवाला ब्रह्म है, एकाग्र होकर आत्माके अधीन हो जाता है, जिससे बढकर यही परब्रह्म है, इस ज्ञानसे मनुष्य-उपासक, जिस पदार्थकी

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha १-नाम नाम्ना जीहवीतिपुरा सूर्यात् पुराषस! (अथवे॰ १४ १७। ३१)। २-मादयन्तामी३ प्रतिष्ठ (यजु॰ २।१३)।

भाग ९४ ******************* इच्छा करता है, उसे सिद्ध कर लेता है। उदाहरणस्वरूप उपासना करता हुआ उपास्यके गुणोंको धारण करता द्र्धको ले लीजिये, उसमें मक्खन भरा हुआ रहता है, है। वह भी क्लेशों, कर्मफलों और वासनाओंसे रहित क्योंकि दूधका सार भाग मक्खन उस दूधको मथकर ही हो जाता है अर्थात् वह निष्काम कर्मयोगी या अनासक्त निकल सकता है। दुधके स्थानमें उपासककी देह है। बन जाता है। फलतः वह साधनाके पथपर बढता मथनदण्ड ओंकारके दृढ़ घर्षण करनेसे मक्खनस्थानीय हुआ क्रमशः विवेकख्यातितकका लाभ प्राप्त कर लेता ज्योतिरूपके दर्शनमें कुछ संशय नहीं रहता। है, जिससे सब कुछ जाननेयोग्य निर्भान्तरूपसे जाना प्रणव त्र्यक्षरमय है अर्थात् अ, उ और म् ओंकाररूपी जाता है, चाहे वह किसी भी देशमें, किसी भी देहमें प्रणव होता है। इसके तीनों अक्षरोंमें त्रिगुणमयी प्रकृति या किसी भी कालमें क्यों न हो (द्रष्टव्य यो०स्० क्रमशः अपने तीनों गुणों तमस्, रजस् और सत्त्व अथवा १।२९)। पतंजलिके अनुसार इस प्रकार निरन्तर स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत्सहित तथा सर्वशक्तिमान् अर्थभावना और प्रणवजप करनेका फल है, प्रत्येक चेतनाकी उपलब्धि और अन्तरायों अर्थात् विघ्नोंका परमेश्वर उनके अधिष्ठाता विराट् हिरण्यगर्भ और ईश्वररूपसे अथवा सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी अभाव। अपेक्षासे ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपसे विद्यमान हैं और पतंजिलने योगसूत्र (१।३०)-में योगके नौ विघ्नोंका वर्णन करके ईश्वरप्रणिधानका उपसंहार करते हुए कहा है प्रणव ही ईश्वररूप है। वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रणवका स्वरूप यह है कि जहाँ कि विघ्नोंके निवारणार्थ ईश्वरका ध्यान और उसके वाचक कोई कार्य है, वहाँ अवश्य कम्पन होगा और जहाँ प्रणवका जप और उसका अभ्यास करें—'तत्प्रतिषेधार्थ-मेकतत्त्वाभ्यासः'(यो०सू० १।३२) कम्पन होगा, वहाँ अवश्य ही कोई शब्द होगा। अत: सृष्टिके आदि कारणरूप कार्यकी ध्वनि ही ओंकार है। इस सम्बन्धमें योगभाष्यकारका कथन प्रणवध्विन ही ओंकार है। प्रणव-ध्विनरूप ध्वन्यात्मक अवलोकनीय है। प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य शब्दका रूप वर्णात्मक प्रतिशब्द होनेके कारण शाब्दिक भावनम्। तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च ओंकार अथवा शब्दातीत प्रणव दोनों ही पूर्वापर सम्बन्धसे भावयत्तश्चित्तमेकाग्रं समपद्यते। तथा चोक्तम्-ईश्वरवाचक होकर प्रणव कहलाते हैं। प्रणवके ध्वन्यात्मक 'स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमावसेत्। होनेके कारण उसका कोई भी अंग मुखसे उच्चारण करनेयोग्य नहीं है, किंतु मानसिक जपसे परे केवल स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥' (यो०सू० ध्यानकी अवस्थामें अन्त:करणमें ही प्रणवध्वनि सुना भी १।२८ पर भाष्य, विष्णु०पु० ६।६।२) अर्थात् 'ओंकार' का जप और ओंकारके वाच्यार्थ दे सकती है। इसी ध्वन्यात्मक प्रकृतिके आदि शब्द ईश्वरवाचक प्रणवका वर्णात्मक प्रतिशब्द उपासना-ईश्वरकी भावना करनी चाहिये। इस प्रकार 'ओंकार' को जपते हुए तथा ओंकारके अर्थ ईश्वरकी भावना काण्डकी सिद्धिके लिये बताया गया है। अत: 'ॐ' शब्दसे प्रणवका ही ग्रहण होता है। करते हुए योगीका चित्त एकाग्र हो जाता है। ऐसा ईश्वरप्रणिधान या ईश्वरभक्तिसे योगसूत्रकार महर्षि विष्णुपुराण (६।६।२)-में कहा भी गया है—ओंकारके पतंजिलका अभिप्राय ईश्वरका वाचक प्रणव अर्थात् जपके पश्चात् योग-साधन करना चाहिये और योग ओम् शब्दका जप और उसके अर्थ ईश्वरकी भावना (साधन)-के पश्चात् जप करना चाहिये। जप और योगकी सिद्धिसे परमात्माका साक्षात्कार होता है। करना है; क्योंकि महर्षि पतंजलिके अनुसार ईश्वर अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशादि क्लेशों, अत: योगमार्गपर चलनेवालोंको उचित है कि 'ओम्' पुण्य-अपुण्य कर्मों, जाति, आयु, दु:ख, सुखादि विपाकों नामसे ही ईश्वरकी उपासना करे; क्योंकि यही उसका और वासनाओंसे अछूता है, अत: साधक भी उसकी मुख्य अनादि नित्य और व्यापक अर्थवाला नाम है।

संख्या ४] संत-वचनामृत संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) 🕸 भगवद्भक्तोंका कभी अशुभ नहीं होता है। यदि सद्गुण प्रभुमें सहज भावसे नित्य निवास करते हैं। जीवमें ये गुण कभी रहते हैं और कभी नहीं भी रहते कुछ अशुभ दीखता है तो भी वह शुभ ही होता है। उसके पीछे कोई-न-कोई भगवत्कृपा छिपी रहती है। हैं। भक्तमें प्रभुके गुणोंका निवास होता है तो भक्त भी 捻 प्रभु सभी जीवोंके परमपिता परमात्मा हैं। कोटि-सहज सद्गुणवान् हो जाता है। इसी तरह ऐश्वर्य-कोटि पिता-मातासे अधिक वात्सल्य जीवोंपर प्रभुका माधुर्यादि भी प्रभुमें नित्य रहते हैं। बालकृष्णने ब्रजमें सदा बना ही है। ईश्वर जीवोंका साथ नहीं छोड़ता है। बड़े-बड़े दुष्ट दैत्योंका संहार किया। ऐश्वर्यपूर्ण चरित्र इस बातपर विश्वास भक्तोंको होता है और इसीसे भक्त किये, पर अपने ऐश्वर्यको छिपाकर रखा। ऐसा परदा निर्भय रहता है। निर्भय-निर्वेर होना भक्तका प्रथम लक्षण योगमायाका कि ये भगवान् हैं, कोई पहचान नहीं सका। है। अपने समीप रहकर प्रभु भक्तकी रक्षा स्वयं करते हैं; पीछे भगवान्का जब वियोग हुआ तो एक-एक चरित्रका क्योंकि वह निरन्तर प्रभुका-सा हो जाता है; क्योंकि वह स्मरण करके ब्रजवासी लोग उनके ऐश्वर्यका-ईश्वरताका निरन्तर प्रभुका चिन्तन करता है। जिसका चिन्तन होगा, अनुमान करके उन्हें ईश्वर मानने लगे। उसीका-सा स्वभाव बन जायगा। यह सत्य है। 🕸 भगवानुके स्वभावका जिसे ज्ञान हो जाता है, 比 परम दयालु भगवान् भक्तोंपर तो दया करते ही उसे संसार अच्छा नहीं लगता। संसारके भोगोंको भोगते हैं, जो अभक्त जीव हैं, उनपर भी प्रभुका प्यार रहता हुए भी वे उनसे अलग रहते हैं, उनमें आसक्त नहीं होते है; क्योंकि वे भी प्रभुके हैं। अत: जीवमात्रके ऊपर हैं। 'जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं दया-क्षमा हमको भी करनी चाहिये। कोई बहुत भजन काम।' जैसे सूर्य और रात एक साथ नहीं रह सकते, करता हो, पर यदि उसमें जीवोंपर दया, सत्य, सदाचार उसी प्रकार संसारी भोगासिक और रामभिक एक साथ हृदयमें नहीं रह सकती। भक्तके शरीरके भोग न हो तो प्रभु प्रसन्न न होंगे। मुझ दासमें विद्या, बुद्धि भगवत्प्रसादयुक्त होते हैं, उनके भोगनेमें भक्तिका साथ कुछ भी नहीं है, पर प्रभु सब प्रकारके सुख दे रहे हैं। मेरे दुर्गुणोंकी ओर नहीं देखते हैं। धन्य है प्रभुके इस नहीं छूटता है। उनके भोग भी भजन हैं। दिव्य स्वभावको। भूले-भटके भी जो प्रभुका नाम लेते 🕏 हम लोग भगवान्की इच्छाशक्तिके अधीन हैं, उन्हें भी अपना मानकर प्रभु उनपर दया करते हैं। रहकर सारे कार्योंको कर रहे हैं। जहाँ-जहाँका अन्नजल 🕸 इस संसारको ईश्वरसे प्रकट मानें। ईश्वरका रूप भाग्यमें है, वहाँ-वहाँ जाना होगा। प्रसन्नताकी बात है मानें, तब मनमें शान्ति रहेगी। जो कुछ हो रहा है अथवा कि सत्संग मिलता है। देहाती गरीब सात्त्विक लोग प्रेमसे जो कुछ होगा, उससे जीवोंका कल्याण ही होगा। कथा सुनते हैं। इसीमें हमको सब कुछकी प्राप्ति हो दयामय प्रभु सबका भरण-पोषण करते हैं और आगे भी जाती है। 'उर प्रेरक रघ्बंस बिभुषन' अर्थात् हृदयमें करेंगे। अपने पूर्वकृत कर्मोंके फलस्वरूप कुछ कष्ट आ श्रीरामजी प्रेरक हैं। परंतु श्रीरामजी केवल भक्तहृदयमें जाय तो उसे भी सहर्ष सहन करना चाहिये। ईश्वरको शुभ प्रेरणा करते हैं। दुष्टजन चोरी-हत्या करते हैं। श्रीरामजी प्रेरक हैं-ऐसा कहनेसे राजा उन्हें दण्डसे दोष नहीं देना चाहिये। हमारे पापोंका पूरा-पूरा फल मिले तो हमको एक क्षणके लिये भी शान्ति न मिले। मुक्त नहीं करेगा, पापियोंके हृदयमें पाप करनेकी प्रेरणा प्रभु दया करके कम-से-कम कष्ट देते हैं। पाप ही कराता है। पाप करनेकी आदत बन जाती है। 🔹 दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि सभी ['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

प्रेममें प्रसन्नता (पं० श्रीचन्द्रभालजी ओझा) प्रेम-वचनोंसे मुदित होकर गया हूँ और इस बारह घण्टेके (१)

गंगाके किनारे एक गाँव था। गाँव बहुत बड़ा नहीं बाद देखता हूँ कि कुछ भी नहीं है, अरे, वह नीमका पेड़ था, पर चुहुलगुल था और आवश्यकताकी सब वस्तुएँ भी नहीं है। यही न कि रोज मैं सात बजे आता था और आज नौ बजे आया हूँ, इतनी ही देरमें यह काण्ड!

वहाँ मिल जाती थीं। उस गाँवमें एक ब्राह्मण रहता था। वह यद्यपि नितान्त निरक्षर नहीं था, पर विद्वान् भी नहीं

था। पढा-लिखा न होनेसे वह पैतृक वृत्ति पुरोहिताई तो

कर नहीं सकता था, परंतु बैठे-बैठे पेट पूरन होना भी कठिन था। अतः कुछ मेहनत-मजूरी करके वह अपना

काम चलाता था। गर्मीके दिनोंमें वह नजदीकके स्टेशनपर पानीपांडेका काम करता था और जाड़ेमें बैलगाड़ी हाँकता

था। घरपर उसकी माता, स्त्री और दो बच्चे थे, दिनभर कड़ा परिश्रम करके वह जो कुछ लाता उससे उसके इस छोटे कुटुम्बका भरण-पोषण किसी तरह हो जाता था।

लड़कोंके स्वर्गीय निर्मल सौन्दर्य, निर्दोष मुख, बाल्य सहज चांचल्य और प्रेमभरी तोतली बोलीपर वह मुग्ध रहता था। दिनभरके कठिन परिश्रमके बाद जब वह थका-हारा घर

करते उसको बहुत ही दु:ख हुआ, उसने सोचा कि चलो लौटता तो बालकोंकी निर्दोष क्रीडाओंसे, माताके दुलारभरे इसी नदीमें मैं भी प्राण विसर्जन कर दूँ, पर आत्मघातके पापके डरने और इस एक आशा—एक अनिर्वचनीय आशाने पुचकारोंसे और प्रेमभरी पत्नीके स्नेहमय सत्कारोंसे उसकी सब थकान और विकलता दूर हो जाती थी। कि शायद कहीं बहते-बिलाते उन लोगोंमेंसे किसीका

इस तरह उसके दिन मजेमें कट रहे थे। पर उसको पता लगे, उसको इस कार्यसे रोका। यदि वे सबके सब यह सुख भी नहीं बदा था। नदीके किनारेपर ग्राम होनेसे उसके सामने ही बह गये होते तो वह भी अवश्य प्राण दे बाढ़ हर साल गाँवके कुछ हिस्सेको बहा ले जाती थी। देता, पर अब एक अव्यक्त, अनिवर्चनीय आशा उसे रोकती

अबकी साल बाढ़ ऐसी आयी कि उधर वह स्टेशनपर पानी पिलाने गया था, इधर समूचा गाँव बह गया। वह लौटकर आया तब न तो उसको अपना घर मिला, न घरके

रहनेवाले! बहुत ढूँढा, पर कहीं पता न चला, गाँवके और लोग जो तैर-तैरकर या पेड़ आदिपर चढ़कर बच गये थे,

फिर घर बनाकर रहने लगे, पर उसका हृदय तो शून्य हो गया था, उसको अब कोई चीज अच्छी नहीं लगती थी। वह विचारता कि अभी-अभी आज प्रात:काल तो जब मैं

लड़कोंको नीमके पेड़के नीचे खेलता छोड़कर और प्रेयसीके

स्टेशन गया हूँ, घर भरा हुआ था, गाँव भरा हुआ था,

भी शान्ति नहीं आयी। विस्मृति, जो दु:खको कम करनेमें बड़ी सहायता पहुँचाती है, उसकी सहायताको न आयी।

जब घरकी यादने—स्नेहमयी माताके प्रेमभरे दुलारोंकी,

िभाग ९४

यदि केवल शोक ही होता तो वह गला फाड़-फाड़कर

बाढ्की प्रचण्डता, उसकी विकरालता और अपने

रोता, पछाडे खाता, पर यहाँ तो आश्चर्य और शोक दोनोंका

सिम्मिश्रण था, उसका हृदय भरा हुआ था, शरीर शून्य हो

गया था, काटो तो बदनमें लहू नहीं, पर वह रोता नहीं था।

गृहजनोंकी असमर्थताका ध्यान आते ही वह पागल-सा

हो गया। 'आह! कालके ग्रासके समान जब नदीकी भयंकर

तरंगें उन लोगोंके सन्मुख पहुँची होंगी तो उन लोगोंने

किस तरह भयभीत होकर मेरा स्मरण किया होगा, हाय!

माँ और स्त्री तो कुछ देर धीरज भी रख सकी होंगी, पर वे

छोटे लड़के, वह दुधमुँहा बच्चा ""! इस तरह विचार

थी। अन्तत: नौकरीको ही सब अनर्थोंकी जड़ समझ उसने

उसे त्याग दिया। वह दिनभर उदास रहता, न भूख लगती

न प्यास, पागलोंकी भाँति इधर-उधर घूमा करता। कभी

किसीने कुछ खिला दिया तो खा लिया, अन्यथा भूखा ही

रह जाता। इस तरह कुछ दिन बीत गये, पर उसको कुछ

प्रेयसी पत्नीके प्रेमभरे चितवन और मधुर मन्द मुसकानकी, सुन्दर बालकोंके निर्दोष मुख, निर्मल हास्य और ललित

संख्या ४] प्रेममें प्र	ासन्तता २९

क्रीड़ाओंकी स्मृतिने उसे अत्यन्त विकल किया तो वह	साधु महाराज जब कृष्ण और सुदामाकी मैत्रीकी कथा
कहीं चले जानेका विचार करने लगा।	कहने लगते तो श्रोता लोगोंके रोम खड़े हो जाते थे। प्रेम
(२)	तथा भक्तिसे हृदय गद्गद हो जाता था। द्रौपदी तथा अर्जुनकी
पासके गाँवमें ही संन्यासियोंका एक मठ था। उसीमें	कृष्णमें भक्ति, सबरीका राममें प्रेम, गिद्धराज और केवटकी
वह भी सम्मिलित हो गया। वहाँ प्रात:-सायं भजनभावमें	कथाएँ बड़ी रोचकताके साथ कहते थे।
तथा दिनभर आश्रमकी विविध क्रियाओंमें लगे रहनेसे उसका	प्रेमके भिखारी, प्रेम-मन्दिरके पुजारी उस शोकातुर
चित्त कुछ जरूर बदला। वहाँ उसके आनन्दकी सब सामग्री	ब्राह्मणपर इसका यथेष्ट प्रभाव भी पड़ा। ईश्वरपर—
प्रस्तुत थी। अच्छा भोजन मिलता था। दस आदिमयोंका	भक्तवत्सल ईश्वरपर, एक दयालु तथा प्रेमी ईश्वरपर उसका
साथ था। भजन, संगीत और वाद्य भी होता था। पर अब	दृढ़ विश्वास हो गया, पर अब भी उसका चेहरा प्रसन्न
भी उसके हृदयकी तन्त्री फूटे ही स्वरमें बजती थी। उसके	नहीं हुआ। हृदय उत्साहसे उमड़ा नहीं। उसको अपने
हृदयकी कली खिली नहीं। चेहरेपर उदासीका आधिपत्य	विश्वासको क्रियारूपमें परिणत करनेका मौका नहीं आया।
अभी जमा ही था। उसको हृदयमें एक कमी मालूम होती	अत: वह वहाँसे भी चल निकला।
थी। एक अभाव था, जिसकी पूर्ति वहाँ नहीं हो रही थी।	(\$)
उसने सोचा कि मेरा समय पहलेसे बहुत अच्छी	चलते-चलते वह एक प्राचीन कुटीरके खँडहरोंमें
तरह कट रहा है। भोजनके लिये उतना परिश्रम नहीं करना	पहुँचा। कुटिया यद्यपि जीर्ण-शीर्ण हो गयी थी, पर उसकी
पड़ता है। बढ़िया भोजन मिलता है, दस आदमियोंमें उसकी	रमणीयता नहीं नष्ट हुई थी। वह वहीं जाकर रहने लगा।
पूछ है, हृदयको प्रसन्न करनेवाले संगीत-वाद्य प्रायः नित्य	दिनभर भीख माँगकर लाता, बनाकर खाता और रातको
ही हुआ करते हैं, पर तब भी हृदय प्रसन्न नहीं है। कारण	वहीं सो रहता। उसके हृदयकी कमी उसको संतप्त किये
क्या है ? बहुत सोचने-विचारनेपर यह परिणाम निकला	हुए थी। उसने सोचा हृदयमें प्रेमकी जो ज्वाला है, जिसकी
कि यहाँ हार्दिक प्रगाढ़ प्रेमका अभाव है। दिखावटी प्रेम	लपटसे शरीर जल रहा है, उसको दूसरेतक पहुँचाना चाहिये,
तो सब करते हैं, पर हृदय छूँछा है। सब अपना-अपना	किसी औरके साथ उसको बँटाना चाहिये। यहाँ किसीसे
काम करते हैं। प्रयोजनवश अथवा आश्रमके आचारका	प्रेम करूँ; सोचा, चलूँ गाँवमें और गाँवके बच्चोंसे किसीको
पालन करनेके लिये मुझसे बोल लेते हैं, आश्रमके नियमके	तोता देकर, किसीको तितली पकड़कर, किसीको भजन
अनुसार ही भोजन भी मिलता है, पर यह सब प्रेमके कारण	तथा गाना सुनाकर प्रेम करूँ। फिर सोचा मुझ गरीबके
नहीं, प्रेमका तो ढकोसलामात्र है।	प्रेमको लड़कोंके माता-पिता कहीं अन्यथा न समझ लें,
निश्छल प्रेम और प्रेमियोंके अभावसे दु:खित होकर	यह न सोचें कि उनके गहनोंको चुरानेके लिये उनको
वह वहाँसे भी चल निकला।	फुसला रहा है अथवा उनको बहकाकर साधु बनानेके
वह उद्देश्यहीन होकर इधर-उधर भ्रमण करता रहा।	लिये लालच दे रहा है।
अन्तमें फिर जाकर एक सन्त-समाजमें सम्मिलित हुआ।	इन सब विचारोंसे गाँवमें जाकर यकायक किसीसे
यहाँ केवल आलसियों और मूर्खोंका जमाव नहीं था।	प्रेम करना उसने अनुचित समझा और उस विचारको त्याग
बल्कि कुछ पढ़े-लिखे साधु भी थे और मठके अध्यक्ष	दिया। वह अब क्या करे ? मठमें साधुबाबासे उसने जो
गीता तथा उपनिषद्का पुनीत उपदेश भी प्रात:–सायं सबको	उपदेश सुन रखा था, उसीकी परीक्षा करनेका उसने निश्चय
श्रवण कराते थे। साधु महाराज ईश्वरको सृष्टिकर्ता, सबको	किया। भक्तवत्सल ईश्वरपर उसका विश्वास तो हो ही
पालनेवाला और परमदयालु तथा भक्तवत्सल बतलाते थे।	गया था। यह भी सुना था कि वह सर्वव्यापी है, अत: व ुप्रकृ दे <mark>वाधिदेविकी अप्यिचेन</mark> , अस्तिस प्रमिक्ति असि न

भाग ९४ ******************* संकल्प किया, पर ईश्वर कोई प्रत्यक्ष वस्तु तो है ही नहीं हुई। उसकी ज्वाला शान्त हुई। राह चलता कोई पथिक यदि थककर विश्राम करने वहाँ आता तो उसको यह समझता जिससे वह गले लिपटता, अपना दु:ख कहता, प्रेमका भिक्षुक बनता। उनकी सेवा करता और प्रेम करनेके बाहरी कि ईश्वरका ही प्रेमी है, जो हमारी कुटीमें हमारे ईश्वरके इंगितोंका दिग्दर्शन करता। कैसे प्रेम करे ? यहाँ भी साधु पास आया है, उसकी खूब सेवा-सत्कार करता। उसके बाबाका गीताका वह उपदेश कि 'भगवान् सर्वत्र समरूपसे इस भावको देखकर लोग आश्चर्य करने लगे और उसकी हैं' काम कर गया। उसने अपनी कल्पनासे मिट्टीकी एक इस प्रसन्नताको अलौकिक मानने लगे। किसीने यह न मूर्ति बनायी, उसको फूलोंसे अलंकृत किया और कुटीमें जाना कि प्रेममें प्रसन्नता है। उसके मुखपर जो इधर दो लीप-पोतकर एक जगह एक उत्तम वेदी बनायी, वहीं उस वर्षोंसे किसीने कभी हँसीकी रेखा भी नहीं देखी थी, अब मूर्तिको रखा, नित्य सबेरे उठकर वह वन-बगीचोंसे सुन्दर-एक विचित्र मुसकुराहट सदा झलकती थी। वह स्वयं तो सुन्दर गन्धवान् पुष्प लाता, उनकी माला बनाता और मूर्तिपर सदा प्रसन्न रहता ही था, दूसरोंको भी प्रसन्न रखनेकी सदा चढाता, दूर-दूरसे बढिया फल लाता और मूर्तिके भोजनके चेष्टा करता था। प्रेम करनेके लिये अक्षय भण्डार पा जानेसे लिये वेदीपर रख देता। गंगाका निर्मल जल उसे पीनेको उसके हृदयकी तन्त्री अब सुस्वर और सदा बजने लगी। देता। जब वह कहीं भीख माँगने चला जाता तो गौ, बकरियाँ उसको स्वयं भी अपने इस परिवर्तनपर आश्चर्य होने लगा। आतीं और सब खा जातीं। आनेपर वह समझता कि उसने विचारा कि कारण क्या है ? जिन प्राणियोंके लिये वह सर्वव्यापी ईश्वर प्रत्यक्ष होकर उसे खा गया है। किसी व्याकुल था, जिनके अभावसे वह दु:खित था, वह जब दिन यदि कोई गाय-बकरी उस तरफ नहीं आयी और जीवित थे तब भी वह उतना निरन्तर प्रसन्न नहीं रहता था। फूल-पत्ती, फल-जल वैसे ही पड़ा रह गया तो वह समझता पहले जब वह काम करके लौटता और घरपर लड़के कि हो-न-हो फलोंमें या फूलोंमें कोई दोष है। तब वह झगड़ते, मार-पीट करते मिलते थे तो उसका चित्त क्रुद्ध हो अपनेको कोसने लगता और दूसरे दिन बहुत परिश्रम तथा जाता था और कभी-कभी वह भी उनको मार बैठता था, खोजके साथ बहुत बढ़िया-बढ़िया सुस्वादु फल तथा जिससे गृहमें एक महान् उत्पात मच जाता था, स्त्री अलग सुगन्धित, कीटहीन, मनोहर पुष्प लाता। फूल जाती, माता अलग झिड़कती, लड़के रोने लगते तब वह सदा अब प्रसन्न रहने लगा। उसके समयका वह सोनेका स्वर्ग मिट्टी हो जाता, या कभी-कभी घर लौटनेपर उसे भोजन तैयार नहीं मिलता था तो वह स्त्रीपर अधिक विभाग उसी मूर्तिकी सेवामें बीतने लगा। उसको क्रुद्ध हो जाता, मातासे जवाब-तलब करता, इस तरह उस हृदयकी कमी पूरी हुई-सी जान पड़ने लगी। वह समझ दिन उस छोटे–से घरमें निरानन्दका साम्राज्य छा जाता। गया कि हमसे कोई प्रेम करनेवाला है और हमारी प्रेम भेंटको स्वीकार कर रहा है। प्रेम करनेके लिये उसे विषय उन घटनाओंका स्मरण आते ही उसे मालूम हुआ भी अनोखा मिला, जो स्वयं अक्षय था और प्रेमका अक्षय कि उस प्रेममें मोह था, झिझक थी, संकोच था, स्वार्थ था भण्डार लिये हुए था। उसको ईश्वरकी सर्वव्यापकतामें और उसके टूट जानेका डर था। उसके इस समयके प्रेममें अब पूर्ण विश्वास हो गया। वह उषा और गोधूलिके समय न झिझक है, न संकोच है, न उसके टूट जानेका डर है, मीठे स्वरमें सुन्दर सरस गीत गाता और भगवान्को रिझानेकी वह तो आशाकी तरह मीठा और आकाशकी तरह अनन्त कोशिश करता। उसको यह भान होता था, मानों वह साक्षात् है। उसके प्रेमका विषय अक्षय, सदा प्रसन्न रहनेवाला, ईश्वरके सन्मुख बैठा हुआ है और साथ ही यह भी कि वह हर एक त्रुटियोंको क्षमा करनेवाला, कभी शिकायत न ईश्वर उसकी ओर स्नेहभरी दृष्टिसे देख रहा है। करनेवाला और सब प्रार्थनाओंको सुन लेनेवाला है, वह अहा! इस भावके आते ही उसका हृदय आनन्दसे अनन्त है, अक्षय है और एकरस है। ऐसे अनन्तको पाकर उछलने लगता। उसके हृदयकी एक बड़ी भारी कमी पूरी वह अनन्तत्वका अनुभव करने लगा।

संख्या ४] यह सच्चा या वह सच्चा? यह सच्चा या वह सच्चा? (श्रीलालजी) यदि दूध और पानीको मिलाकर रख दिया जाय दर भटक रहा है, परंतु वह टुकड़ा भी नसीब नहीं होता। तो हंस दूध पी जायगा और पानी छोड़ देगा। इसी प्रकार इसी प्रकार भूखे-प्यासे तीन दिन बीत गये। जिनमें सारासार विचार करनेका विवेक है, वे भी दैवयोगसे तीसरे दिन सन्ध्या समय वे उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ सदाव्रतमें घी, खिचड़ी बँटती थी। परंतु संसारकी मायामें न लिपट उसकी सार वस्तु (परमात्माको) ग्रहण कर लेते हैं। 'मैं कौन हूँ?' 'कहाँसे आया हूँ?' भिखारी राजाके पहँचनेमें देर हो गयी, सदाव्रत बन्द हो 'मेरा क्या कर्तव्य है?' इत्यादि विषयोंका बार-बार गया था, इसलिये वहाँ भी धक्के ही खाने पड़े। अन्तमें चिन्तन करना ही सारासारका विचार करना है और वही बहुत गिड्गिड्ने और विनती करनेपर सदाव्रतवालेने मनुष्य धानसे चावल निकालकर छिलके (भूसे)-को दयाकर उस भिखारीको पोंछपाछकर थोड़ी खिचड़ी एक अलग कर सकता है। ठीकरेमें डाल दी। भूखके मारे भिखारी राजाका सारा गर्मीका दिन था, महलोंमें खशकी टट्टियाँ लटक शरीर काँप रहा था। ज्यों-त्योंकर उसने खिचडीको एक रही थीं और पंखे चल रहे थे। मिथिलापुरीके राजा ऊँची जगहपर रख कौर उठाया। इतने ही में 'दैवो जनक अपने राजमहलमें सुन्दर मणि-निर्मित पलंगपर दुर्बलघातकः' की उक्तिके अनुसार दो साँड लड़ते-लेटे हुए थे। दास-दासियाँ सेवामें लग रही थीं। हर लडते वहाँ आये और ऐसा धक्का दिया कि ठीकरा तरहका आराम रहनेके कारण जनकको निद्रादेवीने आ धड़ामसे नीचे गिर पड़ा और सारी खिचड़ी धूलमें मिल गयी! यह देख भिखारीकी आँखोंतले अँधेरा छा गया घेरा और वे तन्द्रावश हो एक भयानक स्वप्न देखने और वह भुखकी व्याकुलतासे जोरसे चीख उठा। लगे। चीखते ही राजा जनककी आँखें खुल गयीं। सारा राजा जनकको स्वप्नमें विदित हुआ कि उनके शरीर पसीनेसे तर था और अब भी काँप रहा था। परंतु राज्यपर किसी बलवान् विदेशी शत्रुने आक्रमण किया है। राजाके अनेक प्रयत्न करनेपर भी उनकी हार हुई नींद खुलते ही राजाने देखा कि अब भी वह राजा जनक और शत्रु-राजाने राजा जनकको केवल एक लंगोटीमात्र ही है और अपने महलमें पलंगपर पड़ा हुआ है। हजारों दास-दासियाँ उसकी सेवा-टहलके लिये हाथ जोडे देकर राज्यसे निकाल दिया। इतना ही नहीं वरन् राज्यभरमें यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि जनकको कोई प्रस्तुत हैं। राजाकी चीख सुनकर सब घबरा रहे हैं। कोई भी शरण या किसी प्रकारकी सहायता न दे, अन्यथा उसे पंखा डुलाता है, कोई गुलाबजल छिड़कता है। यह प्राणदण्ड दिया जायगा। जनकको भटकते-भटकते मध्याह्न देखकर राजाके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उन्होंने मनमें हो गया। गर्मीके दिन थे। न सिरपर मुकुट था और न विचारा कि कुछ ही समय पहले मैं भिखारी था, भूखसे पैरमें जूते। भूखसे पेट पीठसे सट गया था! भयके मारे व्याकुल होकर चिल्लाया था और अब मैं राजा हूँ, इन किसीने भी रोटीका एक टुकड़ा देना स्वीकार नहीं दोनोंमें कौन सत्य है ? इस बातका निर्णय करनेके लिये किया। जो राजा इतने बड़े राज्यका स्वामी था, जिसके राजाने एक सभा बैठायी और उसमें बड़े-बड़े वेदान्ती, आगे-पीछे सैकड़ों घुड़सवार सदा नंगी तलवार लिये विद्वान्, पंडित तथा दार्शनिक उपस्थित हुए। चलते थे, जिसकी कृपासे लाखोंका पालन होता था, राजाने अपना प्रश्न केवल 'यह सच्चा कि वह

सच्चा' कह सुनाया। इस अधूरे और गुप्त प्रश्नको

आज वहीं पेट भरनेको एक सूखे टुकड़ेके लिये दर-

सुनकर सब चुप्पी साध गये, किसीसे कुछ कहते नहीं 'राजन्! न यह सच्चा, न वह सच्चा। दोनोंमें कोई भेद नहीं बना। अतएव राजाने उन्हें अपने ही यहाँ रखा। उनके सब आवश्यक सामानका समुचित प्रबन्ध कर दिया और इस प्रकार वे सब राजाके बन्दी बन गये।

एक तेजस्वी बालक रास्तेमें लापरवाहीसे पड़ा था। चोबदारने कहा 'तुम कौन हो ? रास्तेसे हटो बालकने उत्तर दिया 'तू' बड़ा मूढ़ जान पड़ता है और सनेत्र अन्धा है! तू देख रहा है कि मैं एक बालक हूँ जिसके आठों अंग टेढ़े-मेढ़े हैं, फिर भी तू पूछता है 'कौन है।'

एक दिन राजा जनक किसी आवश्यक कार्यसे

बाहर जा रहे थे। आगे-आगे चोबदार चल रहा था। एक स्थानपर एक सँकरी गली होकर जाना पड़ा। वहाँ

शरीरपर यज्ञोपवीत देखते हुए भी तू रास्ता छोड्नेको कहता है, यह बिलकुल उलटी बात है। जा अपने राजासे कह दे कि वह दूसरे रास्तेसे चला जाय। इस विचित्र बातको सुन चोबदारको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने आकर राजासे सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा पैदल ही वहाँ गया और हाथ जोड़कर उनका

परिचय पूछा। ऋषिपुत्रने कहा—'मेरा नाम अष्टावक्र

है, मैं कहोल ऋषिका पुत्र हूँ। मैंने सुना है कि राजा

जनकने बहुतसे ऋषियोंको बन्दी कर लिया है। बता

क्या तू ही जनक है ? तेरा क्या प्रश्न है ? जल्दी बता।' बालककी रहस्यपूर्ण बातोंसे राजा समझ गये कि यह कोई असाधारण बालक है। उन्होंने ऋषिसे क्षमा माँगी और

अपनी पालकीपर बैठाकर उन्हें राजमहल ले गये। दूसरे दिन सभा की गयी, जिसमें बन्दी ऋषि-मुनि भी इकट्ठे हुए। अष्टावक्रजी सिंहासनपर बिठाये गये और उनका यथाविधि पूजनकर राजा जनकने हाथ जोड़कर प्रश्न

किया—'यह सच्चा कि वह सच्चा?' अष्टावक्रने कहा—

है।तूने जो स्वप्न देखा है और उसमें तुझे जो-जो कष्ट हुआ था, वह सब कुछ भी नहीं है; क्योंकि तू इस समय जनकका जनक ही है। यह संसार भी स्वप्नवत्-मृगजलवत्-पानीके बुद्बुदेके सदृश-वंध्यापुत्रके समान और सीपीमें चाँदीका भ्रम होनेके समान असार है, इसलिये यह भी सच्चा नहीं है।

प्रत्यक्ष देखा था। सोये हुएका स्वप्न एक छोटा स्वप्न है और जाग्रत्का संसार एक बड़ा स्वप्न है। बस, इतना ही मात्र भेद है।' इस उत्तरसे राजा जनककी शंकाका समाधान हो गया

स्वप्नमें तेरा यह राज्य नहीं था, जो तू अब प्रत्यक्ष देख रहा है

और जाग्रत्में स्वप्नका वह दृश्य नहीं है, जो तूने उस समय

तत्पश्चात् अष्टावक्रने उन ऋषियोंको यथाशक्ति द्रव्यादि दिलाकर उनके घर भिजवा दिया और अपने पिता कहोल ऋषिका बड़े आदर-मानसे पूजन किया। राजा जनकने

और उपस्थित ऋषियोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

उन्हें अपना गुरु माना और उनसे आत्मज्ञान प्राप्त किया।

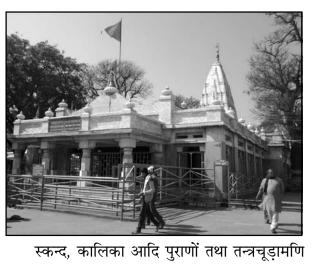
अष्टावक्र मुनिनिर्मित 'अष्टावक्र गीता' मनन करनेयोग्य है।

मुक्तिमिच्छिस चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज । क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद्भज॥ [अष्टावक्रजी राजा जनकसे कहते हैं—] हे तात!यदि तुम मुक्ति चाहते हो, तो विषयोंको विषके समान छोड़ दो और क्षमा, सरलता, दया, सन्तोष एवं सत्यका अमृतके समान सेवन करो।[अष्टावक्र गीता]

तीर्थ-दर्शन-सिद्ध शक्तिपीठ देवीपाटन

(श्रीचरणजीतजी 'चन्द्रेश')

सिद्ध शक्तिपीठ देवीपाटन



संख्या ४]

आदि तान्त्रिक ग्रन्थोंमें शक्तिपीठोंकी परम्परा निर्दिष्ट है। इसके अनुसार ५१ वर्ण-समाम्नायके आश्रय आदिशक्ति

भगवती जगदम्बाकी उपासनाके ५१ जाग्रत् केन्द्र शक्तिपीठके नामसे सम्पूर्ण भारतमें अवस्थित हैं। सम्पूर्ण देशकी धार्मिक एकताका श्रेष्ठ परिज्ञान इन शक्तिपीठोंके माध्यमसे होता

है। एक ओर कैलास (हिमालय)-पर भगवान् शंकरका वास है तो दूसरी ओर सुदूर कन्याकुमारीसे लेकर प्राय: सर्वत्र व्याप्त शक्तिपीठोंके रूपमें भगवती जगदम्बाका निवास

है। इन ५१ सिद्ध शक्तिपीठोंमें देवीपाटनकी भी गणना है।

देवीपाटनकी भौगोलिक स्थिति

यह स्थान उत्तरप्रदेशके गोंडा जनपदमें तुलसीप्र

सीरीया (सूर्या) नदीके तटपर स्थित है। नेपालकी सीमा भी इसके निकट ही है। इसके उत्तरमें नेपाल, दक्षिणमें फैजाबाद (साकेत), पूर्वमें बस्ती और पश्चिममें बाराबंकी

रेलवे स्टेशनसे पश्चिमोत्तर दिशामें लगभग दो फर्लांगपर

एवं गोंडा है। मन्दिरके प्रांगणमें स्थित ध्वंसावशेष अब भी इसकी प्राचीनताका संकेत करते हैं। अवधक्षेत्रके अत्यन्त पुनीत तीर्थोंमें देवीपाटनकी भी गणना है।

> नामकरण इस शक्तिपीठका नाम देवीपाटन है। पाटन पत्तनका

अपभ्रंश है। संस्कृतभाषामें 'पत्तन' शब्द नगरका वाचक

उनके वाम स्कन्धके साथ गिरा था। पाटनकी प्रसिद्धि

कबसे हुई-इस सम्बन्धमें एक श्लोक उपलब्ध है-पटेन सहितः स्कन्धः पपात यत्र भूतले।

तत्र पाटेश्वरीनाम्ना ख्यातिमाप्ता महेश्वरी॥ देवीभागवतादि पुराणोंके अनुसार भी शिवजीकी प्रथम पत्नी सतीका वाम स्कन्ध (अंग) पट (वस्त्र)-के सहित

यहाँ गिरा, तबसे यह 'देवीपाटन' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वाल्मीकि-रामायणमें वर्णित है कि भगवान श्रीराम लंका-विजयके पश्चात् अयोध्यामें राज्य-सिंहासनासीन

हुए। गुप्तचरके मुखसे रजकद्वारा कथित सीताविषयक अपवादको सुनकर उन्हें वनवास दे दिया था। लवकुश-युद्धके पश्चात् जब वाल्मीकिजी समाजके बीच

श्रीसीताजीको अपने साथ लेकर भगवान् श्रीरामके समक्ष उपस्थित हुए, तब सीताजीने पृथ्वीमातासे प्रार्थना की कि 'यदि मैं मनसा-वाचा-कर्मणा सदा भगवान्

जायँ और मैं आपकी गोदमें प्रविष्ट हो जाऊँ।' ऐसा कहते ही पृथ्वी फट गयी और उस विवरमेंसे एक सिंहासन निकला, जिसपर स्वयं पृथ्वीदेवी बैठी थीं।

गयीं। इसीसे इस स्थानका नाम 'पातालेश्वरी' भी प्रचलित है।

अपने देशमें उन्हीं स्थानोंको पवित्र तीर्थस्थल माना

जाता है, जो महात्माओंकी चरणधूलिसे परिशुद्ध हुए हैं, जहाँ महान् ऋषियोंने तपस्या करके कल्याणकारी तत्त्वोंका आविष्कार किया है और जो स्थल विभिन्न

अवतारी पुरुषों तथा देवी-देवताओंके पुण्यचरित्रसे सम्बन्धित

हैं। देवीपाटन महामाया भगवती दुर्गादेवीका स्थान

श्रीरामजीकी ही पूजा करती रही हूँ तो आप फट

वे सीताजीको अपने साथ लेकर पाताललोकको चली

होनेके कारण युग-युगान्तरोंसे पवित्र, श्रेष्ठ तथा पुज्य माना गया है। पुराणोंमें इसका विभिन्न रूपोंमें वर्णन

प्राप्त होता है। देवीकी महिमा निम्न ग्रन्थोंमें मिलती है—

कालिकापुराण, (४) स्कन्दपुराण।

है। 'देवीपत्तन' अर्थात् देवीका नगर। कुछ लोग 'पाटन'

FARM AGOE PART THE BUT THE BANKE TO BOTTON OF THE STEEL STEEL OF THE STEEL STE

(१) देवीपुराण, (२) देवीभागवत, (३)

भाग ९४ ******************** हैं, उनका सारांश इस प्रकार है— भुवनोंमें घूमने लगे। यह देखकर भगवान् विष्णुको चिन्ता एक बार ब्रह्माजी ने यज्ञ प्रारम्भ किया। उसमें सभी हुई कि यदि शिव स्थिर न होंगे तो सृष्टि नष्ट हो जायगी। देवताओंके साथ-साथ विष्णु और शिव भी निमन्त्रित थे। उन्होंने (विष्णुने) योगमायाकी सहायतासे सतीजीके शरीरके यज्ञ-कार्य सुचारु रूपसे चल रहा था। इसी समय दक्षका खण्ड-खण्डकर भूतलपर गिराना प्रारम्भ कर दिया। भिन्न-आगमन हुआ, जो सतीजीके पिता एवं शिवजीके श्वसुर थे। भिन्न स्थानोंपर माँ सतीके ५१ अंग गिरे। जहाँ-जहाँ वे दक्षको आया देख सभी देवता उठ खड़े हुए, परंतु शिवजी न अंग गिरे, वे ५१ स्थल शक्तिपीठके रूपमें पूजित हुए। तो उठे और न उन्हें नमस्कार ही किया। इस कारण दक्षको इनमें कुछ प्रमुख स्थानोंके नाम निम्नलिखित हैं—सिर शिवजीके द्वारा अपना तिरस्कार प्रतिभासित हुआ। जब गिरनेवाला स्थल—हिंगलाज (बलूचिस्तान), मस्तक— दक्षको प्रजापति-पद प्राप्त हुआ, तब उन्होंने बदला लेनेकी दुर्गादेवी बांसवाडा (राजस्थान), जिह्वा—ज्वालामुखी दृष्टिसे यह घोषणा की कि 'किसी भी यज्ञमें शंकरको भाग (जिला कांगडा), बायाँ कपोल—हरिसिद्धी (उज्जैन), न दिया जाय।' देवताओंको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कण्ठ—वैष्णवीदेवी (जम्मू-कश्मीर), दाहिनी हथेली— सर्वथा यज्ञ न करना ही पसन्द किया, परंतु दक्ष प्रजापतिने विन्ध्यवासिनी विन्ध्याचल (मिर्जापुर), छाती—त्रिपुरसुन्दरी कनखल नामक स्थानपर (हरिद्वारमें) यज्ञ प्रारम्भ किया। (बैजनाथ-धाम), दक्षिण स्तन—शारदादेवी (मैहर)। यह भगवान् शंकरका अपमान हो—यही उस यज्ञका उद्देश्य मैहर स्टेशन सतनासे २२ मीलपर है, पीठ—कन्याकुमारी था। उसमें सभी ऋषि, मुनि, देवी-देवताओंको आमन्त्रित (मद्रास), योनि—कामाख्यादेवी (आसाम), बायीं जंघा— किया गया था, किंतु शिवजीको नहीं बुलाया गया। उसी तुलजा भवानी (महाराष्ट्र) तथा बायाँ कंधा वस्त्रसहित द्वेषके कारण उन्होंने अपनी पुत्री सतीको भी भुला दिया। देवीपाटनमें गिरा था। ये सभी स्थान आगे चलकर सिद्ध परंतु सतीजीने जब पितृ-गृहमें यज्ञ होनेकी बात सुनी तो वे शक्तिपीठके रूपमें प्रसिद्ध हुए। तुरंत वहाँ जानेके लिये तैयार हो गयीं। वे भगवान् शिवके जनश्रुतिके अनुसार योगिराज गोरक्षनाथ साक्षात् शिवस्वरूप कहे जाते हैं। एक मतसे इन्हें भगवान् शिवने निषेध करनेपर भी न मानीं। भगवान् शिवने भवितव्यताको देखकर कुछ गणोंके साथ सतीको यज्ञमें भेज दिया। अपनी जटासे उत्पन्न किया और उनसे कहा कि जहाँ-सतीजी यज्ञमें पधारीं। वहाँ उन्होंने भगवान् शिवके अतिरिक्त जहाँ सतीके अंगोंका पात हुआ है, वहाँ-वहाँ जाकर सभी देवताओंका यज्ञीय भाग देखा। अपने स्वामी (शिव)-आप सिद्धपीठोंकी स्थापना तथा पूजापद्धतिका उपदेश की यह उपेक्षा देखकर वे क्रोधाविष्ट हो गयीं और कीजिये। तदनुसार उन्होंने यहाँ उपासना की थी। यह योगक्रियाद्वारा उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। यह उनकी श्लोक यहाँके शिलालेखके रूपमें प्राप्त है— विचित्र लीला ही थी। महादेवसमाज्ञप्तः सतीस्कन्धविभूषिताम्। इधर भगवान् शिवने उपर्युक्त घटनाके फलस्वरूप गोरक्षनाथो योगीन्द्रस्तेन पाटेश्वरीमठीम्॥ वीरभद्र नामक भयानक गणको उत्पन्न किया। वीरभद्रने उक्त श्लोकसे यह सिद्ध होता है कि श्रीपाटनदेवी-यज्ञस्थलपर जाकर यज्ञको विध्वंस कर दिया तथा स्थान जितना प्राचीन है, उतना ही प्रतिष्ठित भी है। यहाँ शिवद्रोहियोंको नष्ट कर डाला। भगवान् शिवने स्वयं दूर-दूरसे यात्रीगण आते हैं और अपनी श्रद्धांके अनुसार उपस्थित होकर दक्ष प्रजापितका सिर काट लिया। तब नारियलका गोला, जटादार नारियल, धूप, दीप, चुनरी, सभी देवगणोंने भगवान् शंकरकी स्तृति की और कहा कि नैवेद्य, जायफल, आँख, छत्र, ध्वजा, सिन्दूर आदि 'दक्षको जीवित कर दीजिये।' क्रोध शान्त होनेपर महादेवने जगदम्बाके समक्ष अर्पितकर अभीष्टकी प्राप्ति करते हैं। देवताओंकी प्रार्थनाके वशीभृत होकर प्रजापित दक्षको यहाँकी परम्पराके अनुसार मन्दिरमें नित्य ६ घंटे पूजा बकरेका सिर लगाकर जीवित कर दिया। इसके बाद होती है। प्रत्येक सोमवार और शुक्रवारको जनताकी लीलाधारी शिवजी जगदम्बा सतीजीका शव लेकर चौदहों भीड अन्य दिनोंकी अपेक्षा अधिक होती है।

संख्या ४] सिद्ध शक्तिर्प	ोठ देवीपाटन ३५	
******************	**************************************	
मन्दिरके दर्शनीय स्थल	मन्दिरमें आओगे, तब तुम्हारी भी पूजा होगी।' परम्परानुसार	
१-मन्दिरके अन्त:कक्षमें कोई प्रतिमा नहीं है। वहाँ	अभी भी नेपाल प्रदेशके बाबा रतननाथ मठ-दांड	
चाँदीसे मढ़ा हुआ एक गोल चबूतरा है। कहा जाता है, उसीके	चौधारा स्थानसे प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल पंचमीको पात्र-	
नीचे पातालतक सुरंग है। चबूतरेपर कपड़ा बिछा रहता है,	देवता देवीपाटन जाते हैं। आनेवालोंका सारा प्रबन्ध	
जिसपर भक्तजन प्रसाद आदि चढ़ाते हैं।	मठकी ओरसे होता है और सब योगीश्वरोंको विदाई	
२-चबूतरेके ऊपर एक ताम्रच्छत्र है, जिसपर	(कुछ धनराशि) भी दी जाती है। एकादशीको पुन:	
सम्पूर्ण दुर्गासप्तशती अंकित है। उसके नीचे चाँदीके	पात्र-देव चौधारा वापस चले जाते हैं। पात्र-देवताके	
अन्य कई छत्र हैं।	रहते माताजीके घंटे-नगाड़े आदिका बजना बन्द रहता	
३–मन्दिरमें घृतकी दो अखण्ड ज्योतियाँ (दीप)	है एवं देवीका पूजन भी रतनबाबाके पुजारी ही करते हैं।	
अनवरत जलती रहती हैं। भक्तजन इनका काजल नेत्र-	मीर समरकी समाधिके सम्बन्धमें जन–साधारणकी	
रोग-निवारणार्थ ले जाते हैं।	धारणा तथा लोक-आख्यायिका भी है कि जब सैयद	
४-मन्दिरकी परिक्रमामें मातृगणोंके यन्त्र विद्यमान हैं।	सालारजंग मसूद गाज़ीने बहराइचके बालांकि ऋषिके	
इन यन्त्रोंकी आराधनासे भूत-प्रेतजनित बाधाएँ दूर होती हैं।	आश्रम एवं सूर्यमन्दिरको नष्ट किया, उसी समय उसीकी	
५-मन्दिरके उत्तरमें सूर्यकुण्ड जीर्णावस्थामें विद्यमान	एक सैनिक टुकड़ीने देवीपाटनको भी ध्वस्त करनेका	
है। कहते हैं कि उसमें स्नान करनेसे कुष्ठरोगका	प्रयास किया, किंतु स्थानीय जनता एवं भक्तजनोंने उस	
निवारण होता है। प्रत्येक रविवारको सूर्यकुण्डमें स्नानकर	आक्रमणका वीरताके साथ सामना किया, जिससे वह	
जो व्यक्ति विधिवत् षोडशोपचारसे देवीका पूजन करता	सैनिक-टुकड़ी पराजित हो गयी।	
है, उसकी सारी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं और वह	एक दूसरी जनश्रुति इस मन्दिरके सम्बन्धमें इस	
पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हो जाता है।	प्रकार भी है—सैयद सालारजंग मसूद गाज़ीके बाद	
६-महिषासुरमर्दिनी भगवती कालिकाका मन्दिर है।	मुगल बादशाह औरंगजेबने अपने सेनापित मीर समरको	
७-बटुकनाथ भैरवकी आराधनासे शत्रु-बाधा नष्ट	इस मन्दिरको ध्वस्त करनेके लिये भेजा। मीर समरने	
होती है।	एक विशाल सेनाके साथ मन्दिरपर आक्रमण किया।	
८-अखण्ड धूनी है, जो अनवरत प्रज्वलित कही	मन्दिरको ध्वस्त करनेके प्रयासमें उसने मन्दिरका मुख्य	
जाती है। यह कभी बुझती नहीं, इसके लिये सरकारसे	पूजा-स्थल जो अरघेके रूपमें है और जहाँसे माँ सतीका	
प्रतिवर्ष २५० गाड़ी लकड़ी जंगलसे प्राप्त होती है।	अंग पातालमें गया था, उसमें बाँस डलवाकर उसकी	
९-चन्द्रशेखर महादेव-मन्दिर, हनुमान-मन्दिर, बाबा	गहराई नापनेका प्रयास किया। देवीके चमत्कारके रूपमें	
रतननाथका दरीचा एवं मीर समरकी समाधि आदि	अचानक उसमेंसे हजारोंकी संख्यामें मधुमिक्खयाँ निकलीं	
दर्शनीय स्थल हैं।	और सैनिकोंको काटने लगीं, इससे बहुत–से सैनिक भाग	
बाबा रतननाथजीकी कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है—	खड़े हुए। सेनापित मीर समर मारा गया। आज भी	
कहते हैं, वे एक बड़े सिद्ध पुरुष एवं महान् योगी थे	उसकी समाधि मन्दिरके प्रांगणमें स्थित है।	
और प्रतिदिन अपनी योगशक्तिसे दांड (नेपाल)-की	देवीपाटनमें प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल नवरात्रमें बड़ा	
पहाड़ियोंसे आकर देवीपाटनमें देवीकी आराधना किया	विशाल मेला लगता है, जो उत्तरांचलमें सबसे बड़ा माना	
करते थे। एक बार देवीने आराधनासे प्रसन्न होकर उनसे	जाता है। देशके कोने–कोनेसे लाखों दर्शनार्थी आते हैं।	
वरदान माँगनेको कहा। श्रीरतननाथजीने कहा कि 'माता!	बड़ी-बड़ी प्रसिद्ध दुकानें भी आती हैं। यह पावन	
मेरी भी पूजा आपके साथ इस मन्दिरमें हो!' तब	शक्तिपीठ भारत-नेपालकी धार्मिक एकताका प्रतीक और	
भगवतीने 'तथास्तु' कहकर यह वर दिया कि 'जब तुम	दोनों देशोंकी जनता के लिये समान रूपसे पूज्य है।	
		

आबाल ब्रह्मचारी बालागुरु षडानन्दजी महाराज संत-चरित—

(पं० श्रीशिवप्रसादजी शर्मा)

भारतीय संस्कृतिके संरक्षणमें सन्तोंकी भूमिका प्रकार बालागुरु षडानन्दका अक्षरारम्भसहित अध्ययन प्रशंसनीय रही है। उसी परम्पराकी रक्षामें सभ्य समाजके अपने घरमें तथा ननिहालमें हुआ था।

सहयोगसे आजीवन संघर्ष करके भी उस परम्पराकी रक्षा संस्कार—बालक षडानन्दकी अवस्था जब आठ करनेवाले महापुरुष इसी भारतभूमिमें उदित होते रहते वर्षकी हुई, तब उनकी माँ और भाइयोंने उनका

हैं। महामना मदनमोहन मालवीयजीका सारगर्भित उदुगार यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कराया। व्रतबन्ध-संस्कारके है—'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा॥' अनन्तर वे अपनी बडी दीदीके घर गये और वहींसे वे

यह उक्ति इसलिये सारगिभत है कि संस्कृत, संस्कृति अध्ययनहेतु जनकपुरके गुरुकुल पहुँचे। उस समय जनकपुर नेपाल देशके सबसे बड़े शैक्षिक और धार्मिक

और संस्कार—ये तीनों पूर्वीय दर्शनकी आधारशिला हैं। संस्कृतद्वारा संस्कृतिका ज्ञान और संस्कृतिसे संस्कार केन्द्रके रूपमें प्रसिद्ध था।

महाराज थे, वे दर्शनशास्त्र, व्याकरण, उपनिषद् आदिके

सम्पन्न होते हैं। इसी तथ्यकी घोषणा नेपालके भोजपुर दिङ्लामें जन्म लेनेवाले बालागुरु षडानन्दकी कीर्ति-किरणें भी

कर रही हैं कि जिसने विश्वभाषाकी ज्येष्ठ और समृद्ध भाषा संस्कृतका ज्ञान किया, उसने संस्कृति तथा संस्कारको समझ लिया।

बालागुरुके जीवनका पूर्वार्ध बालागुरु भोजपुर जिलेके दिङ्लाके गढ़िगाँवमें पं० लक्ष्मीनारायणकी पत्नी रुक्मिणीके गर्भसे विक्रम सम्वत्

१८९२ मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमीके दिन प्रकट हुए। इनके जन्मसे पूर्व ही पिता लक्ष्मीनारायणका निधन हो चुका था। वे अपने पाँच भाई, तीन बहनोंमें सबसे छोटे थे। इनके संरक्षणमें माता रुक्मिणीको बडी कठिनाईका

सामना करना पडा। इनका पोषण पडोसमें रहने-वाली एक दर्जिन नित्य दिनमें दो बार आकर नवजात शिशुको दुध पिलाकर कर जाती थी। इस प्रकार

विभिन्न कठिनाइयों और आर्थिक समस्याओंके बीच वे

बड़े हुए। विलक्षण प्रतिभासम्पन्न रहे। वे अपनी जननीसे धार्मिक

पौराणिक बातें पूछते रहते थे। कथा सुननेके बहाने घूमते

शिक्षा—बालक षडानन्द छोटी अवस्थासे ही

प्रसिद्धिमें आया।

रहते, घरमें आकर सुनी हुई कथाएँ सबको सुनाते थे।

विभिन्न विद्वानोंसे करने लगे। इस प्रकार काशीमें ही

षडुदर्शन जैसे पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, वैशेषिक दर्शन, न्यायदर्शन, योगदर्शनके साथ नास्तिक दर्शन,

बौद्ध दर्शन आदिमें भी उन्होंने आवश्यक जानकारी

गुरुकुलमें शिक्षा देनेवाले प्रधान बाबा रामदासजी

अध्यापनमें निष्णात थे। षडानन्दजी हरेक विषयमें प्रवेश

करना चाहते थे। विशेषकर पातञ्जलयोगदर्शनकी तरफ

वे विशेष आकर्षित रहे। इस प्रकार वे वेदान्तदर्शन,

व्याकरण और ज्योतिषमें पारंगत हुए। साथ ही वे

किया। अनुशासनमें मर्यादित रहते हुए वे गुरुकी आज्ञा

लेकर एक ही समय भोजन करते, अन्यथा भूखे रहते।

छात्रावस्थामें उन्होंने गुरुभक्तिको अपने जीवनका अभिन्न

अंग बनाया। इसीसे वे गुरुके शयनके बाद ही सोते,

उच्च शिक्षाहेतु विक्रम सं० १९०८ में सोलह सालकी

आयुमें बालागुरु हिन्दुओंके पवित्र तीर्थ तथा सर्वश्रेष्ठ

विद्याकेन्द्र एवं मुक्तिक्षेत्र काशीमें आये। काशीमें गंगातटपर

स्थित ज्योतिर्मठमें विभिन्न विषयके विद्वान् अध्यापन

करते थे। षडानन्द भी अनेकों विषयोंका अध्ययन

इस प्रकार गुरुकुलमें प्रारम्भिक शिक्षा अर्जनकर

बालाने गुरुकुलमें अति संयमित जीवन व्यतीत

योगाभ्यासमें भी नित्य निरत रहे।

गुरुके जागनेके पहले ही उठते।

िभाग ९४

इसीलिये लोग इनको बालागुरु कहने लगे। यही नाम हासिल की। साथ-साथ उन्होंने गणित, भूगोल, इतिहास, वे छोटी अवस्थामें ही रुद्रीपाठ करने लगे थे। इस अंग्रेजी, फ्रेंच और फारसी भाषाका भी अभ्यास किया।

संख्या ४] आबाल ब्रह्मचारी बालागुरु षडानन्दजी महाराज ३७	
*******************	**************************************
उनकी प्रतिभा अलौकिक थी, इसलिये एक बार पढ़नेपर	ज्योतिर्मठके शंकराचार्य जगद्गुरुने उनको १०८ गुरु
वह विषय उनके अधीन हो जाता। भगवद्गीताके	महाराजकी उपाधिसे विभूषित किया।
अठारह अध्याय वे बिना पुस्तकके पाठ करते।	पश्चात् बालागुरु महाराजने बदरीनाथ और
अध्ययनकालमें ही काशीकी परम्परानुसार शास्त्रार्थमें भी	केदारनाथका दर्शन किया। वहाँसे लौटकर जगन्नाथ
भाग लेते थे। इस प्रकार काशीमें ८ वर्षका समय	पहुँचे, वहाँ दर्शनकर गोवर्धनपीठके शंकराचार्यजीसे
व्यतीतकर उन्होंने योगसाधनाका विचार बनाया। काशीसे	मिले। वहाँ भी विद्वानोंसे शास्त्रार्थ हुआ।
लौटकर बालागुरु षडानन्दने वाग्मती नदीके तटपर	इसके बाद वे रामेश्वर सेतुबन्धकी यात्रामें गये। वहाँ
जंगलमें एकान्त स्थानपर तपस्याके लिये आसन जमाया।	दर्शनके पश्चात् वे पाण्डिचेरी पहुँचे। वहाँके फ्रेन्च पादरियोंसे
छोटी-सी कुटिया अपने ही हाथोंसे निर्माणकर उसीमें	क्रिश्चियन धर्मकी जानकारी ली। वहाँसे गोवा, गोवासे
साधना करनेका निश्चय किया। यह स्थान सर्लाही	बम्बई, बम्बईसे गुजरातमें द्वारकापीठके दर्शन करने पहुँचे।
जिलामें हाथीडण्डाके नामसे प्रसिद्ध था। केवल जल	वहाँपर शारदापीठमें कुछ दिन निवासकर वहाँसे पंजाब
पीकर वे साधनामें संलग्न हुए। थोड़े समयमें यहाँ	लौटे, वहाँपर सिखोंके गुरुद्वारे पहुँचकर गुरुग्रन्थ साहबका
लोगोंका आना-जाना होने लगा, इसलिये साधनामें	अध्ययन किया। साथ ही मुसलमानोंके धर्मग्रन्थ
विघ्नके भयसे आप वहाँसे उठकर काठमाण्डू के पंचली	कुरआनशरीफकी समालोचनाकर दोनों धर्मींका तुलनात्मक
नामक वनमें वाग्मतीके किनारे बैठकर केवल जल पीकर	ज्ञानकर दिल्ली आये। पश्चात् उत्तर प्रदेशके तीर्थ वृन्दावन,
तपस्या करने लगे। इस स्थानपर ब्रह्मचारी बालागुरु	मथुरा, प्रयाग होते हुए बिहारके गयाजी पहुँचे। वहाँसे
बारह वर्षतक कठोर तपस्यामें लगे रहे। उन्होंने चौबीस	लौटकर पुनः नेपाल, पंचलीमें आये। इस प्रकार भारतके
पुरश्चरण त्रिपदा गायत्री जपका संकल्प लिया। चौबीस	तीर्थ-भ्रमणमें बालागुरुको दो वर्ष लगे।
लाखका एक पुरश्चरण होता है। चौबीस पुरश्चरणमें	पंचलीमें भीड़ होने लगी, तब वहाँसे उठकर वे
पाँच करोड़ छिहत्तर लाख गायत्री मन्त्रका जप करना	योगाभ्यासके विचारसे नेपालके पश्चिम पोखरा चले गये
था। इस साधनाके सम्बन्धमें उन्हें काशीमें अपने गुरु	और फेवा तालके तटपर जंगलमें छोटी कुटिया तैयार कर
स्वामी सिच्चदानन्द महाराजसे आज्ञा मिली थी कि	ली। इस बार उनके पास एक कम्बल, कमण्डलु और
गायत्री पुरश्चरण पूर्ण करके समाज और संस्कृतिकी	झोला तीन सामान थे। पुन: वे अन्न का त्यागकर फल,
सेवामें संलग्न होना। सम्पूर्ण जपमें एक समय मात्र	जलके सहारे अष्टांगयोग साधनामें तत्पर हुए।
फल-जलका आहार करते हुए बालागुरुने वि०सं०	वहाँ योगाभ्यासके साथ बालागुरुद्वारा सेती नदीके
१९१६ से १९२८ तकको बारह वर्षकी साधनामें चौबीस	पश्चिमतटपर नारायण आश्रम नामक एक ब्रह्मचर्य
पुरश्चरण जप सम्पन्नकर पुरश्चरणका उद्यापन किया।	आश्रमकी स्थापना हुई। उसके संचालनके लिये स्थानीय
उद्यापन-समारोह सम्पन्न होनेपर बालागुरुको	निवासियोंद्वारा उदारतापूर्वक जगह-जगह खेत आश्रमके
समीपकी भैरव धर्मशालामें लाया गया। अब वहाँ रहकर	नाम रजिस्ट्री किये गये।
वे ब्रह्मज्ञानका उपदेश करने लगे।	बालागुरुको अष्टांग योगसाधनामें मात्र छ: मास
बालागुरुके जीवनका उत्तरार्ध	लगा। वे पहलेसे ही सिद्ध योगी थे। इस प्रकार छ: मासके
तीर्थयात्रा—बालागुरु कुछ दिन धर्मशालामें रहनेके	योगाभ्यासके बाद वे पुन: काठमाण्डू वापस आये। कुछ
पश्चात् भारतवर्षकी तीर्थयात्राकी इच्छासे प्रस्थानकर	दिन बाद गुरुजीकी आज्ञा यादकर उनके मनमें अपनी
विक्रम सम्वत् १९२८के चैत्रमासमें काशी ज्योतिर्मठमें	जननी-जन्मभूमिका विकास करनेकी विचारधारा बनी।
पहुँचे, वहाँ रहकर कुछ दिन विद्वानोंके साथ विविध विर्मिणप्र णा ंड्रास्ट्रिमिणेड्रास्ट्रामिशेडिसिक्टिस्ट्रामिशे	साथ ही एक दिन रातमें उन्हें अपनी माँका दर्शन हुआ। व्यक्तिकात प्रकृति अपने सहयोगी जिल्कों की खतीकी /अर्रि

भाग ९४ वि॰सं॰ १९३९ में उन्होंने अपने दो छात्रोंके साथ 'स्वर्गादपि मन्दिरके साथ ही गुरुकुलकी भी स्थापना हुई। गरीयसी', जननी जन्मभृमिकी तरफ प्रस्थान किया। प्रारम्भमें सर्वविद्या विषयोंमें पारंगत बालागुरु स्वयं बालागुरु १९३९ में जब अपनी जन्मभूमि दिङ्ला वृक्षकी छायामें आसनासीन होकर निष्पक्ष भावसे सभी पहुँचे, उस समय वे ३९ सालके हो गये थे। ८ वर्षकी जाति-वर्गके बालकोंको बिना भेदभावके पढ़ाने लगे। अवस्थामें यज्ञोपवीत-संस्कारके बाद वे निकले थे। ३१ धीरे-धीरे गुरुकुल विकसित हुआ, पूर्व भूटानसे पश्चिम वर्षके बाद जन्मभूमि पहुँचे बालागुरुका स्थानीय प्युठान (पश्चिमी नेपाल)-तकके छात्र एकत्रित होने लगे। सामान्यरूपसे स्थानीय नागरिकोंके सहयोगसे जनसमूहद्वारा भव्य स्वागत हुआ। यहाँसे उनके घर गठिगाँवतक हजारों लोग उनके साथ लगे थे। छात्रावास और विद्यालय-भवन निर्माण किये गये। बालागुरुने अपने घरमें पहुँचते ही देखा उनकी स्थानीय जमींदार एवं खेतीवालोंके सहयोगसे बहुत-सी जननी अस्वस्थावस्थामें थीं। दूसरे ही दिन माताजी जमीन विद्यालयको दानमें प्राप्त हुई। दिवंगत हुईं। माता रुक्मिणीका अन्तिम संस्कार अरुण खेतीकी आमदनीद्वारा छात्रोंको वृत्ति भी मिलने नदीके सती घाटपर सम्पन्न हुआ। माताकी मृत्युके बाद लगी। गुरुओंकी भी व्यवस्था हुई। सन्त षडानन्द इस हिन्दुओंके नियमानुसार बालागुरुने अपनी माताका क्रियाकर्म विद्यापीठके पीठाधीशके रूपमें रहकर शिक्षा, संस्कृति और सदाचारकी ज्योति फैलाने लगे। विद्यार्थी स्वेच्छानुसार करके एक वर्षतक व्रत-नियमका पालन किया। धार्मिक गतिविधि—माताका वार्षिक कर्म सम्पन्न वेद, वेदान्त, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, कानून, करके बालागुरुका विचार अपने जन्मस्थान दिङ्लाको गणित, धर्मशास्त्र, पुराण पढने लगे। इस प्रकार दिङ्ला शैक्षिक और धार्मिक दृष्टिसे प्रमुख स्थानके रूपमें एक उत्तम विद्याकेन्द्रके रूपमें जाना जाने लगा। विकसित करनेका हुआ। सर्वप्रथम वे प्राचीन ऋषि-सिद्धयोगी षडानन्द सहृदयी सन्त थे। उन्होंने 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की उक्तिको सार्थक किया। उन्होंने मुनियोंद्वारा संचालित गुरुकुलकी स्थापनाकर विद्याका प्रचार-प्रसार करनेकी ओर सोचने लगे। विवाहकर घर-गृहस्थीके संचालनका विचार नहीं किया। गुरुकुल-संचालनके साथ-साथ वे मन्दिर-निर्माण इसीलिये वे सभीके आस्था और प्रेरक पुरुषके रूपमें रहे। और मूर्तिकी प्रतिष्ठाकर धार्मिक स्थलके रूपमें इसकी कोई उन्हें बालागुरु कहते, कोई गुरु महाराज। उनकी नि:स्वार्थ सेवा देखकर नेपालकी तत्कालीन राणा प्रसिद्धि चाहते थे। भगवान् शंकरके लिये शिवालय तथा सीता-राम, लक्ष्मण, हनुमानजीके लिये रामजानकी-सरकारने भी उनका नीतिगत सेवा-सहयोग किया था। मन्दिरके निर्माणकी उनकी योजना थी, जिसे उन्होंने ऐसे सन्तकी अवहेलना नहीं करना चाहिये, अपमान होगा १९३२ वि०सं० में मन्दिर बनवाकर तथा उसी सालके तो पाप लगेगा, ऐसा वे कहते थे। इसीलिये निर्बाधरूपसे चैत्र शुक्ल रामनवमीके दिन सीतारामकी प्रतिमाकी वहाँपर संस्कृत, संस्कृति और संस्कारका विकास हुआ। स्थापना एवं प्राणप्रतिष्ठाकर साकार किया। सन्त षडानन्द संस्कृतिप्रेमी थे। सनातन वैदिक धर्म-दर्शन उनका जीवनपथ था। इसीलिये उन्होंने किसी उन्होंने एक शिवालय बनवाकर उसमें नर्मदेश्वर महादेवकी स्थापना और प्राणप्रतिष्ठा करवायी। पहाडके धार्मिक सम्प्रदायको नहीं अपनाया। उन्होंने अपने गुरुकुलके परिसरमें बड़े-बड़े राम, कृष्ण, सीता और महादेवजीके जिस शिखरपर वे सब देवालय और देवता प्रतिष्ठित हुए, मन्दिरोंका निर्माण कराया। नियमित पूजाकी व्यवस्था उस शिखरका नाम उन्होंने कैलास शिखर रखा। शिक्षण-संस्थाकी स्थापना—दिङ्ला शिक्षा, की थी। चातुर्मास और पर्वमें पुराणका पाठ प्रवचन होता था। सभी श्रद्धालु भक्त मन्दिरमें पूजा-दर्शन और संस्कृति और संस्कारमात्रसे पिछड़ा नहीं था, अपितु सड़क, पुल, रहन-सहन, सामाजिक वातावरण आदिसे भी पिछड़ा मण्डपमें पुराण सुन सकते थे। हुआ था। ऐसी परिस्थितिमें उसी साल सबके सहयोगसे आज भी मन्दिर-मण्डप, पाठशालामें रुद्री,

शंख और घंटा-ध्वनिसे रोगोंका नाश संख्या ४] दुर्गासप्तशतीसहित आधुनिक विषयोंका भी पठन-पाठन वृद्धावस्थामें भी कठोर परिश्रम कर रहे थे। जीवनके शेष

> दिन काठमाण्डुमें व्यतीत करनेके विचारसे वे वि०सं० १९७२ में पूर्वस्थान पंचली घाटके धर्मशालामें रहने

> लगे। यहींपर भजन करते हुए वि०सं०१९७३के ज्येष्ठ

संस्कार, शिक्षाक्षेत्रमें किये गये सत्कार्य-कलाप प्रशंसनीय

हैं। उन्होंने जन्मभूमि नेपालसे लेकर जनकपुर, मुक्तिक्षेत्र

काशीके अतिरिक्त समग्र भारतके तीर्थाटनके बहाने

बालागुरु षडानन्दद्वारा समाज, संस्कृति, संस्कृत,

मासमें उनके पार्थिव शरीरका निधन हो गया।

होता है। समाज-सुधारके कार्य--- बालागुरुका जीवनकाल

सुधारकी दुष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण था। विशेषकर उनके

द्वारा किये गये शैक्षिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक,

भक्तियोगमें निपृण थे।

बालागुरुने अपने जीवनका महत्त्वपूर्ण समय दिङ्लाके चतुर्मुखी विकासमें व्यतीत किया था। वे ८१ वर्षकी

बौद्धिक, आर्थिक सुधारोंको भुलाया नहीं जा सकता।

बालागुरु समाजसुधारके पक्षपाती थे। समाजकी विकृतियों

बालागुरु षडानन्द अलौकिक शक्ति और सामर्थ्यसे

और विसंगतियोंका उन्होंने खुलकर विरोध किया था।

सम्पन्न सन्त थे। उन्होंने पूर्वीय गगनतलमें शिक्षा,

अनेक भाषाओं, विभिन्न कलाओं एवं धर्म-सम्प्रदायोंमें

संस्कृति और संस्कारकी ज्योतिका विस्तार किया। उनकी वाणी सिद्ध थी। वे न पढ़ पानेवाले विद्यार्थीको

निहित तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त किया और स्वदेश लौटकर वैदिक सत्य सनातन प्राचीन धर्म-मर्यादामें अटल रहते हुए समूचे नेपाल राष्ट्रमें संस्कृत-शिक्षा, संस्कार, सभ्यताका

पुराणका वाचनकर जीविका चलानेका आशीर्वाद देकर

भेज देते थे। महर्षि षडानन्द ज्ञानयोग, कर्मयोग और

प्रचार-प्रसारकर अपनी समुज्ज्वल कीर्ति-पताकाका विस्तार करते हुए 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' सुक्तिको सार्थक

बनाया तथा देश-विदेशतक मानव जीवनके कर्तव्यका उपदेश देकर आदर्श मानवताका सन्देश दिया।

शंख और घंटा-ध्वनिसे रोगोंका नाश

सन् १९२८ ई० में बर्लिन विश्वविद्यालयने शंख-ध्वनिपर अनुसन्धान करके यह सिद्ध कर दिया कि शंख-ध्वनिकी शब्द-तरंगें बैक्टीरियाको नष्ट करनेके लिये उत्तम एवं सस्ती औषधि हैं। प्रति सेकेण्ड

सत्ताईस घन फुट वायु-शक्तिके जोरसे बजाया हुआ शंख १२०० फुट दूरीके बैक्टीरियाको नष्ट कर डालता है और २६०० फुटकी दूरीके जीवाण उस ध्वनिसे मूर्च्छित हो जाते हैं। बैक्टीरियाके अलावा इससे हैजा,

मलेरिया और गर्दनतोड़-ज्वरके कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं; साथ ही ध्वनिविस्तारक स्थानके पासके स्थान निःसन्देह कीटाणुरहित हो जाते हैं। मिर्गी, मुर्च्छा, कण्ठमाला और कोढ़के रोगियोंके अन्दर शंख-ध्वनिकी

प्रतिक्रिया रोगनाशक होती है। शिकागोके डाॅ० डी० ब्राइनने तेरह सौ बहरे रोगियोंको शंख-ध्वनिके माध्यमसे

अबतक ठीक किया है। अफ्रीकाके निवासी घंटाको ही बजाकर जहरीले सर्पके काटे हुए मनुष्यको ठीक करनेकी प्रक्रियाको पता नहीं कबसे आजतक करते चले आ रहे हैं। ऐसा पता चला है कि मास्को

सैनेटोरियममें घंटा-ध्वनिसे तपेदिक रोगको ठीक करनेका प्रयोग सफलतापूर्वक चल रहा है। सन् १९१६ ई०में बर्मिंघममें एक मुकदमा चल रहा था। तपेदिकके एक रोगीने गिरजाघरमें बजनेवाले घंटेके सम्बन्धमें अदालतमें यह दावा किया था कि इस ध्वनिके कारण मेरा स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा है तथा इससे मुझे काफी शारीरिक क्षित होती है। इस बातपर अदालतने तीन प्रमुख वैज्ञानिकोंको घंटा-

ध्वनिकी जाँचके लिये नियुक्त किया। यह परीक्षण लगातार सात महीनोंतक चला और अन्तमें वैज्ञानिकोंने यह घोषित किया कि घंटाकी ध्वनिसे तपेदिक रोग ठीक होता है न कि इससे नुकसान। साथ ही तपेदिकके अलावा इससे कई शारीरिक कष्ट भी दूर होते हैं तथा मानसिक उत्कर्ष होता है। [श्रीयमुनाप्रसादजी]

प्रभुमें विश्वास कैसे बढ़े ?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधककी निर्बलता और प्रभुकी उदारता

मनुष्यमें सबसे बड़ी निर्बलता तो यह है कि वह

जिसको करना बुरा समझता है, उसे किये बिना नहीं रह सकता। जिसे करना उचित समझता है, उसे नहीं कर पाता। भगवान्ने जो

इसे सुचारूरूपसे कर्म करनेके लिये क्रियाशक्ति और विवेकशक्ति

दी है, उसका यह सदुपयोग न करके दुरुपयोग करता है।

तथापि भगवान् इतने उदार और दयालु हैं कि जब उन शक्तियोंका

ह्रास हो जाता है, तब सब कुछ जानते हुए भी उसके अपराधकी

ओर ध्यान न देकर बार-बार उसे वही शक्ति प्रदान करते रहते

हैं। इस रहस्यको समझकर यदि साधक भगवान्से उनके द्वारा प्रदत्त शक्तिका सदुपयोग करनेका बल प्रदान करनेके लिये

प्रार्थना करे तो वह भी देनेके लिये वे महान् उदार प्रभु सदैव प्रस्तुत हैं। भगवान्के इस भावको समझनेवाला साधक उनमें

प्रेम-विश्वास किये बिना रह ही कैसे सकता है ? जो साधक भगवान्को अपना लेता है, उनसे प्रेम करना

चाहता है, वह कैसा है, महान् दुराचारी है या सदाचारी, उच्च वर्ण है या नीच वर्ण-जातिका—इस बातका भगवान् जरा भी

विचार नहीं करते। जो उनको चाहता है, उनके साथ प्रेम करना चाहता है—वे उससे प्रेम करनेके लिये सदैव उत्सुक

रहते हैं। साधक उनसे जितना प्रेम करता है, वे उससे कितना अधिक प्रेम करते हैं—इसका वाणीद्वारा कोई वर्णन नहीं कर

सकता। भगवान्की इस महिमाको समझनेवाला साधक उनपर अपनेको न्योछावर कर देनेके सिवा और करेगा ही क्या ?

इस प्रकार अपनी निर्बलता और भगवान्की महिमाके विषयमें साधकको विचार करते रहना चाहिये। विवेकके

प्रकाशमें विचार करनेपर जानकारीका बढ़ना स्वाभाविक है।

भगवान्की कृपा

जिस साधकको अपने बल-पुरुषार्थपर भरोसा है, जो

यह समझता है कि अपने कर्मोंके फलस्वरूपमें प्राप्त शक्तिके

द्वारा साधन करके मैं अपने लक्ष्यको प्राप्त कर लूँगा—उसे

भगवत्कृपाका अनुभव नहीं होता। वैसे ही जो विचारमार्गमें विश्वास रखनेवाला साधक विचारके द्वारा ही अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ रहा है—उसे भी भगवत्कृपाका अनुभव नहीं

उनकी कृपाकी ही बाट जोहता रहता है तथा उस साधकको भी भगवत्कृपाका अनुभव होता है, जो यह मानता है कि

मुझे जो कुछ विवेक प्राप्त है—वह भगवान्का ही प्रसाद है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर तथा अन्य समस्त साधनसामग्री

उन्हींकी है और उन्होंने ही कृपापूर्वक इनका सदुपयोग करनेके लिये इनको मुझे दिया है। उन्हींकी कृपा, प्रेरणासे

साधनमें मेरी प्रवृत्ति तथा प्रगति होती है और होगी। इस प्रकार जो अपनेको भगवान्की कृपाका पात्र मानता है और

उस मान्यतामें भी भगवान्की कृपाको ही कारण समझता है, उसे भगवत्कृपाका अनुभव अवश्य होता है।

मनकी एकाग्रता मनकी एकाग्रताके उपाय साधकोंकी प्रकृति, योग्यता और विश्वासके भेदसे अनेक हैं। उनमें प्रधान साधन

वैराग्य अर्थात् रागका अभाव है। अभ्याससे भी मनकी एकाग्रता होती है; परंतु केवल अभ्यासद्वारा की हुई एकाग्रता टिकती नहीं, पुन: चंचलतामें बदल जाती है।

जब मनमें सभी इच्छाओंका सर्वथा अभाव हो जाता है, तब मनकी स्वाभाविक एकाग्रता होती है और वही टिकती है। जो मनकी चंचलतासे दुखी होकर एकमात्र एकाग्रताका

इच्छुक होता है, जबतक मन एकाग्र नहीं होता तबतक जिसको चैन नहीं पड़ता, उसका मन भी अवश्य एकाग्र हो जाता है। जो साधक किसी स्थितिकी प्राप्तिके उद्देश्यसे किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा भावमें अपने मनको लगाकर कर्तृत्व-

भावपूर्वक मनको एकाग्र करनेके लिये प्रयत्न करता है,

होता। भगवत्कृपाका अनुभव उस साधकको होता है, जिसको

उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास है। जो हर समय हरेक परिस्थितिमें

उसका मन कालान्तरमें एकाग्र नहीं रहता; क्योंकि कर्ता और भोक्ताभावके रहते हुए जो स्थिति प्राप्त की जाती है, उसका अन्त अवश्य होता है—यह प्राकृतिक नियम है।

जो चित्तकी एकाग्रताको ही सबसे अधिक आवश्यक काम समझ लेता है, जिसे चित्तकी एकाग्रता न होनेकी पूरी

वेदना है, चित्त एकाग्र हुए बिना जिसको चैन नहीं पड़ता, उसका चित्त एकाग्र हो जाता है।

गायके चरनेमें रुकावट डालनेके कारण नरक-दर्शन संख्या ४ 1 गायके चरनेमें रुकावट डालनेके कारण नरक-दर्शन अपराधके त्याग देता है, उसको भी यहाँ आना पड़ता एक समयकी बात है, राजा जनकने योगके द्वारा अपने शरीरका परित्याग कर दिया। उस समय उनके है। जो धनके लालचमें फँसकर मित्रके साथ धोखा पास एक विमान आया, जो क्षुद्र-घण्टिकाओंसे शोभा पा करता है, वह मनुष्य यहाँ आकर मेरे हाथसे भयंकर रहा था। राजा दिव्य-देहसे विमानपर आरूढ़ होकर चल यातना प्राप्त करता है। जो मृढ्चित्त मानव दम्भ, द्वेष दिये और उनके त्यागे हुए शरीरको सेवकगण उठा ले अथवा उपहासवश मन, वाणी एवं क्रियाद्वारा कभी गये। राजा जनक धर्मराजकी संयमनीपुरीके निकटवर्ती भगवान् श्रीरामका स्मरण नहीं करता, उसे बाँधकर मैं मार्गसे जा रहे थे। उस समय करोड़ों नरकोंमें जो नरकोंमें डाल देता हूँ और अच्छी तरह पकाता हूँ। पापाचारी जीव यातना भोग रहे थे, वे जनकके शरीरकी जिन्होंने नरकके कष्टका निवारण करनेवाले रमानाथ वायुका स्पर्श पाकर सुखी हो गये, परंतु जब वे उस भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण किया है, वे मेरे स्थानको स्थानसे आगे निकले तो पापपीड़ित प्राणी उन्हें जाते देख छोड़कर बहुत शीघ्र वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं। भयभीत होकर जोर-जोरसे चीत्कार करने लगे। वे नहीं मनुष्योंके शरीरमें तभीतक पाप ठहर पाता है, जबतक कि वे अपनी जिह्वासे श्रीराम-नामका उच्चारण नहीं चाहते थे कि राजा जनकसे वियोग हो। उन्होंने करुणा-जनक वाणीमें कहा—'पुण्यात्मन्! यहाँसे न जाओ। करते। महामते! जो बडे-बडे पापोंका आचरण करनेवाले, हैं, उन्हीं लोगोंको मेरे दूत यहाँ ले आते हैं! तुम्हारे-तुम्हारे शरीरको छूकर चलनेवाली वायुका स्पर्श पाकर हम यातनापीडित प्राणियोंको बडा सुख मिल रहा है।' जैसे पुण्यात्माओंकी ओर तो वे देख ही नहीं सकते; अतः महाराज! यहाँसे जाओ और अनेक प्रकारके दिव्य 'राजा बड़े धर्मात्मा थे, उन दुखी जीवोंकी पुकार सुनकर उनके हृदयमें करुणा भर आयी। वे सोचने भोगोंका उपभोग करो। इस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ लगे—'यदि मेरे रहनेसे इन प्राणियोंको सुख होता है, तो होकर अपने उपार्जित किये हुए पुण्यको भोगो।' अब मैं इसी नगरमें निवास करूँगा; यही मेरे लिये मनोहर जनकने कहा—'नाथ! मुझे इन दुखी जीवोंपर दया स्वर्ग है।' ऐसा विचार करके राजा जनक दुखी आती है, अत: इन्हें छोड़कर मैं नहीं जा सकता। मेरे प्राणियोंको सुख पहुँचानेके लिये वहीं—नरकके दरवाजेपर शरीरकी वायुका स्पर्श पाकर इन लोगोंको सुख मिल ही ठहर गये। उस समय उनका हृदय दयासे परिपूर्ण हो रहा है। धर्मराज! यदि आप नरकमें पड़े हुए इन सभी रहा था। इतनेहीमें नरकके उस दु:खदायी द्वारपर नाना प्राणियोंको छोड़ दें, तो मैं पुण्यात्माओंके निवासस्थान प्रकारके पातक करनेवाले प्राणियोंको कठोर यातना देने स्वर्गको सुखपूर्वक जा सकता हूँ।' वाले धर्मराज स्वयं उपस्थित हुए। उन्होंने देखा, महान् धर्मराज बोले-राजन्! यह जो तुम्हारे सामने पुण्यात्मा तथा दयालु राजा जनक विमानपर आरूढ़ हो खडा है, इस पापीने अपने मित्रकी पत्नीके साथ, जो नरकके दरवाजेपर खडे हैं। उन्हें देखकर प्रेतराज हँस इसके ऊपर पूर्ण विश्वास करती थी, बलात्कार किया है; पड़े और बोले—'राजन्! तुम तो समस्त धर्मात्माओंके इसलिये मैंने इसे लोहशंकु नामक नरकमें डालकर दस शिरोमणि हो, भला तुम यहाँ कैसे आये? यह स्थान तो हजार वर्षोंतक पकाया है। इसके पश्चात् इसे सुअरकी प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले पापाचारी एवं दुष्टात्मा योनिमें डालकर अन्तमें मनुष्यके शरीरमें उत्पन्न करना जीवोंके लिये है। यहाँ तुम्हारे समान पुण्यात्मा पुरुष नहीं है। मनुष्य-योनिमें यह नपुंसक होगा। इस दूसरे पापीने आते। यहाँ उन्हीं मनुष्योंका आगमन होता है, जो अन्य अनेकों बार बलपूर्वक परायी स्त्रियोंका आलिंगन किया प्राणियोंसे द्रोह करते, दूसरोंपर कलंक लगाते तथा है; इसलिये यह सौ वर्षोंतक रौरव नरकमें पकाया औरोंका धन लूट-खसोटकर जीविका चलाते हैं। जो जायगा और यह जो पापी खड़ा है, यह बड़ी नीच असीम प्रभावमा त्रीं में हुए वे केवरायका प्रास्त्रका / विक्त क्वार्यि वसायुक्त । श्री रूसिक प्रश्रीकी प्रमान कि प्रभावकार्य कार्या विकास स्थाप कार्या विकास स्थाप कार्या विकास स्थाप कार्या विकास स्थाप कार्या कार्य

भाग ९४ सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले थे; उन्होंने नरकसे इसलिये इसके दोनों हाथ काटकर मैं इसे पूयशोणित नामक नरकमें पकाऊँगा। इसने सायंकालके समय निकले हुए प्राणियोंका सूर्यके समान तेजस्वी रूप देखकर मन-ही-मन बड़े सन्तोषका अनुभव किया। वे भूखसे पीड़ित होकर घरपर आये हुए अतिथिका वचनद्वारा भी स्वागत-सत्कार नहीं किया है; अत: इसे सभी प्राणी दयासागर महाराज जनककी प्रशंसा करते अन्धकारसे भरे हुए तामिस्र नामक नरकमें गिराना उचित हुए दिव्य लोकको चले गये। नरकस्थ प्राणियोंके चले है। वहाँ भ्रमरोंसे पीड़ित होकर यह सौ वर्षोंतक यातना जानेपर राजा जनकने सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ यमराजसे भोगे। यह पापी उच्च स्वरसे दूसरोंकी निन्दा करते हुए प्रश्न किया। कभी लज्जित नहीं हुआ है तथा उसने भी कान लगा-राजाने कहा—'धर्मराज! आपने कहा था कि पाप करनेवाले मनुष्य ही आपके स्थानपर आते हैं, धार्मिक लगाकर अनेकों बार दूसरोंकी निन्दा सुनी है; अत: ये दोनों पापी अन्धकूपमें पड़कर दु:ख-पर-दु:ख उठा रहे चर्चामें लगे रहनेवाले जीवोंका यहाँ आगमन नहीं होता। हैं। यह जो अत्यन्त उद्विग्न दिखायी दे रहा है, मित्रोंसे ऐसी दशामें मेरा यहाँ किस पापके कारण आना हुआ द्रोह करनेवाला है, इसीलिये इसे रौरव नरकमें पकाया है ? आप धर्मात्मा हैं; इसलिये मेरे पापका समस्त कारण जाता है। नरश्रेष्ठ! इन सभी पापियोंको इनके पापोंका आरम्भसे ही बतायें। भोग कराकर छुटकारा दूँगा। अतः तुम उत्तम लोकोंमें धर्मराज बोले-राजन्! तुम्हारा पुण्य बहुत बड़ा जाओ; क्योंकि तुमने पुण्य-राशिका उपार्जन किया है। है। इस पृथ्वीपर तुम्हारे समान पुण्य किसीका नहीं है। तुम श्रीरघुनाथजीके युगलचरणारविन्दोंका मकरन्द पान जनकने पूछा—धर्मराज! इन दुखी जीवोंका नरकसे उद्धार कैसे होगा? आप वह उपाय बतायें, जिसका करनेवाले भ्रमर हो। तुम्हारी कीर्तिमयी गंगा मलसे भरे अनुष्ठान करनेसे इन्हें सुख मिले। हुए समस्त पापियोंको पवित्र कर देती है। वह अत्यन्त धर्मराज बोले-महाराज! इन्होंने कभी भगवान् आनन्द प्रदान करनेवाली और दुष्टोंको तारनेवाली है विष्णुकी आराधना नहीं की, उनकी कथा नहीं सुनी, तथापि तुम्हारा एक छोटा-सा पाप भी है, जिसके कारण तुम पुण्यसे भरे होनेपर भी संयमनीपुरीके पास आये हो। फिर इन पापियोंको नरकसे छुटकारा कैसे मिल सकता है! इन्होंने बड़े-बड़े पाप किये हैं तो भी यदि तुम इन्हें एक समयकी बात है—एक गाय कहीं चर रही थी, छुड़ाना चाहते हो तो अपना पुण्य अर्पण करो। कौन-तुमने पहुँचकर उसके चरनेमें रुकावट डाल दी। उसी सा पुण्य? सो मैं बतलाता हूँ। एक दिन प्रात:काल पापका यह फल है कि तुम्हें नरकका दरवाजा देखना उठकर तुमने शुद्ध चित्तसे श्रीरघुनाथजीका ध्यान किया पड़ा है। इस समय तुम उससे छुटकारा पा गये तथा था, जिनका नाम महान् पापोंका भी नाश करनेवाला है। तुम्हारा पुण्य पहलेसे बहुत बढ़ गया; अत: अपने नरश्रेष्ठ! उस दिन तुमने जो अकस्मात् 'राम-राम' का पुण्यद्वारा उपार्जित नाना प्रकारके उत्तम भोगोंका उपभोग करो। श्रीरघुनाथजी करुणाके सागर हैं। उन्होंने इन दुखी उच्चारण किया था, उसीका पुण्य इन पापियोंको दे डालो; जिससे इनका नरकसे उद्धार हो जाय।' जीवोंका दु:ख दूर करनेके लिये ही संयमनीके इस बुद्धिमान् धर्मराजके उपर्युक्त वचन सुनकर राजा महामार्गमें तुम-जैसे वैष्णवको भेज दिया है। सुव्रत! यदि तुम इस मार्गसे नहीं आते तो इन बेचारोंका नरकसे जनकने अपने जीवनभरका कमाया हुआ पुण्य उन पापियोंको दे डाला। उनके संकल्प करते ही नरकमें पडे उद्धार कैसे होता! महामते! दूसरोंके दु:खसे दुखी हुए जीव तत्क्षण वहाँसे मुक्त हो गये और दिव्य शरीर होनेवाले तुम्हारे-जैसे दयाधाम महात्मा आर्त प्राणियोंका धारण करके जनकसे बोले—'राजन्! आपकी कृपासे दु:ख दूर करते ही हैं। तब यमराजको प्रणाम करके राजा जनक परमधामको हमलोग एक ही क्षणमें इस दु:खदायी नरकसे छुटकारा पा गये, अब हम परमधामको जा रहे हैं।' राजा जनक चले गये। [पद्मपुराण]

साधनोपयोगी पत्र संख्या ४] साधनोपयोगी पत्र ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र ४—श्री××××का चुनावमें विजयी होना केवल मिला। आपके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर निम्नलिखित हैं— यह सिद्ध करता है कि लोग उनकी विचारधाराके हैं। १—ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है। तुकाराम, वह विचारधारा ठीक है या गलत, यह इससे सिद्ध नहीं नामदेव, सूरदास, तुलसीदास, गौरांग-महाप्रभु, श्रीरामकृष्ण होता। रही भगवान्की बात, सो भगवान्के लिये तो सभी पुत्र समान हैं। मनुष्यकी कर्ममें स्वतन्त्रताका अर्थ क्या परमहंस आदिपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं रहे, यदि भगवान् उसके कर्मोंको उलट-पुलट कर दिया है। जो भी भगवानुका सच्चा भक्त हो, वह आज भी भगवानुके दर्शन प्राप्त कर सकता है। करें। विजय, यश एवं सम्पन्नता यदि दम्भ या मक्कारीके २-रूस तथा चीनमें क्या है और क्या नहीं है, फल हैं तो सभी दम्भी, मक्कार सफल होने चाहिये। हमें यह तो विवादकी बात है। लेकिन आप स्वयं कहते हैं यह नहीं भूलना चाहिये कि विजय, सम्मान, धन, सुख कि वहाँ सम्पन्नताके साथ ईमानदारी-सत्य आदि हैं और आदि मनुष्यको पूर्वजन्मके कर्मींके फलसे (प्रारब्धसे) भारतमें दरिद्रताके साथ चोरी-बेईमानी आदि। इसका मिलते हैं। अपने वर्तमान पाप या पुण्यका फल तो उसे अर्थ यही है कि दोनों स्थानोंके लोग अपने-अपने आगे भोगना पड़ेगा। कर्मींका फल भोग रहे हैं। भगवान्को केवल मुखसे ५-भगवान्ने द्रौपदीकी लाज बचायी, जब उसने मानना या न मानना कोई अर्थ नहीं रखता। मुखसे कातरभावसे भगवान्को पुकारा। हमारे पास एक भी भगवानुको मानकर भी जो पाप करते हैं, उनका ऐसा पत्र नहीं आया कि देश-विभाजनके समयके भगवान्को न माननेवालोंसे अधिक दुखी रहना तो ठीक उपद्रवोंमें किसीने भगवान्को श्रद्धासे पुकारा हो और ही है। उनका अपराध तो और भी बड़ा हो जाता है। उसकी रक्षा न हुई हो। लेकिन यह हमारा कितना मानसिक पतन है कि ऐसी दुरवस्थामें भी हमें भगवानुकी ३—भारतमें जो वर्तमान समाज है, व्यापक रूपमें वह अध्यात्ममें विश्वास कहाँ करता है। विदेशोंकी याद नहीं आती। ६—एक सन्तकी भी अपने शरीरमें आसक्ति नहीं स्वतन्त्रताने उन्हें सिखाया कि सत्य-ईमानदारी आदिसे व्यावहारिक क्षेत्रमें लाभ होता है। जहाँ यह लाभ नहीं होती तब भगवान्की भला मूर्तियों या मन्दिरमें आसिक्त दीखता, वे लोग भी सद्गुणोंकी अपेक्षा नहीं करते। कैसे हो सकती है, जो वे उनकी रक्षा करने दौड़ पड़ें। भारतकी पराधीनताने दरिद्रता दी और पाश्चात्य प्रभावने मूर्तिका महत्त्व तो आराधकके लिये है और यदि अर्थलोलुपता दी। दोनोंके मेलसे यहाँ छल, कपट, दम्भ आराधक उसकी रक्षाके लिये प्राण देता है तो उसे भगवान्के लोककी प्राप्ति होती है। यदि वह भगवान्से आदिकी बहुलता हो गयी। अध्यात्मवाद यदि होता तो ये दुर्गुण आते ही नहीं। दुर्गुण तो आये ही, ये अर्थको ही मूर्तिकी रक्षाके लिये कातर पुकार करे, तो वह भी प्रधान माननेसे हैं। सद्गुण यदि कहीं व्यावहारिक सम्भव है, किंतु सच्चे भक्त तो कर्तव्यपर बलिदान होना कारणोंसे हैं भी तो उनकी नींव दुर्बल है। वे तो केवल ही पसन्द करते हैं। ७—आप यह कैसे मानते हैं कि हिंदू-जातिका भगवानुकी मान्यताके आधारपर ही सुदृढ़ हो सकते हैं। किंतु वह आस्तिकता सच्ची होनी चाहिये। केवल ह्रास पाप-पुण्यके विचारसे हुआ है? इतिहासमें जो जातियाँ लुप्त हो गयीं, क्या वे पाप-पुण्यके विचारके मौखिक या दिखाऊ आस्तिकता तो दम्भ है।

िभाग ९४ कारण लुप्त हुईं? सच तो यह है कि हिंदू-जातिने सुधरती तो हैं नहीं, हमें उलटा दु:ख होता है। माता, पुण्यको, धर्मको छोड़ दिया है, यही उसके ह्रासका पत्नी, पुत्र आदि हमें प्रारब्धसे ही प्राप्त हुए हैं। हमें कारण है। धर्म शक्ति देता है, दुर्बलता या कायरता नहीं सबके साथ रहकर काम चलाना है। जैसे हमारे स्वभावमें अनेक दुर्बलताएँ हैं, वैसे ही दूसरेके स्वभावमें दिया करता। भी हैं। आप बम्बईमें जहाँ रहते हैं, वहाँ दूसरोंसे कैसे ८ - हमारे लोकनेता एवं हमारा नवशिक्षित समाज कैसा है, सो तो स्पष्ट है। सनातनधर्मकी रक्षा मनुष्यके निभा लेते हैं। घरमें भी यदि आप वही व्यवहार करें तो लिये होगी, ऐसा तो सोचना ही अहंकार है। लेकिन बडी शान्ति मिलेगी। माताजी किसी बातपर बिगडें तो मनुष्यका कर्तव्य है धर्मकी सेवा एवं रक्षाके लिये प्रयत्न क्षमा माँग ली, पत्नीसे भूल हुई तो हँसकर कह दिया-करना और जो भी विचारशील हैं, उन्हें अपने कर्तव्यका 'तुमसे तो यह भूल होती ही है, अच्छा कोई बात नहीं।' यथाशक्ति पालन करना चाहिये। इससे दो बातें होंगी, पत्नी और माताजी आपसे स्नेह ९-लक्ष्मी और कीर्ति तो प्रारब्धजन्य पुण्यके करने लगेंगी। माताजी स्वयं कहेंगी—'बिजली जल गयी फलस्वरूप बढती है। इस जीवनमें जो दम्भ, छल, कपट तो क्या हुआ?' यदि आप उनके कहनेसे पहले कहें-आदि करते हैं, वे कोई भी हों और लोग उन्हें कुछ भी 'माताजी, क्षमा करें। कल मेरे दोषसे बिलजी देरतक कहें या समझें, अपने कर्मोंके फलस्वरूप अनन्त दु:ख जली।' पत्नी स्वयं अपने दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न तो आगे चलकर उन्हें भोगने ही पडेंगे। करेगी। मान लीजिये, ये बातें न भी हों तो आपके १०—धन और कीर्ति प्रारब्धसे मिलते हैं। चित्तको क्षोभ नहीं होगा। भूलें तो अब भी होती ही हैं। हम किसीको समझाकर या डाँटकर, झगड़कर ऐसा नहीं ११-१२—धन, कीर्ति, स्वास्थ्यादि भगवान्की प्रार्थनासे भी मिल सकते हैं। प्रार्थनाके लिये न कोई बना सकते कि वह हमारी इच्छाके अनुकूल ही चले। प्रकार है, न स्थान और न समय। पूर्ण विश्वाससे, अनन्य फिर यह बात भी नहीं है कि हमारा सोचना सर्वथा भावसे जो सहज कातर-प्रार्थना होती है, वह कभी व्यर्थ भूलसे रहित ही होता है। हम स्वयं नम्र बनकर, झुककर, नहीं जाती। प्रार्थना हृदयसे उठती है, उसे पुस्तकके द्वारा क्षमा करके, विचार करके सबको निभा ले सकते हैं, सीखा नहीं जाता। बँधे शब्द प्रार्थना नहीं हैं—भगवानुके चित्तकी शान्तिका यही उपाय है। प्रति अपने हृदयके सच्चे भावोंका पूर्ण विश्वाससे निवेदन माताजीकी वृद्धावस्थाका ध्यान रखना चाहिये। करना ही प्रार्थना है। उन्हें कष्ट नहीं होना चाहिये। बच्चोंकी पढाई जहाँ ठीक १३—संध्या अवश्य करनी चाहिये। संध्या न हो, उन्हें वहीं रखना चाहिये, किंतु पत्नीको तो माताजीके पास ही रखना ठीक है। करनेसे पाप लगता ही है। १४—गायत्री-मन्त्रके आदि-अन्तमें प्रणव लगानेमें आत्महत्या बडा भारी पाप है। इससे किसी गृहस्थके लिये भी कोई दोष नहीं है। कष्टकी निवृत्ति नहीं होती। प्रारब्ध तो आगे भी भोगना १५—मनकी एकाग्रता तो अभ्याससे होती है। धैर्य ही पड़ेगा। और आत्महत्याके पापके फलसे वह और एवं नियमपूर्वक अभ्यास करते रहनेसे धीरे-धीरे मन घोरतर हो जायगा। अत: यह बात तो मनसे ही निकाल एकाग्र होने लगेगा। देनी चाहिये। भगवान् परम दयालु हैं। उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके उन दयामयसे प्रार्थना करना ही १६, १७, १८—अनेक बातें ऐसी होती हैं, जो हमें सह लेनी चाहिये। जब हम उन्हें नहीं सह लेते तो वे सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। शेष प्रभुकृपा।

संख्या ४] कृपानुभूति रामनाम-संकीर्तनसे परलोकसे वापसी घटना सन् २००१ ई० की है। मैं बंगालके सिलीगुड़ी उन्होंने मुझसे किया, वह अद्भुत, रोमांचक और अविस्मरणीय नगरमें रहता हूँ। कॉलेजकी पढ़ाई पूरी करनेके पश्चात् था। शिवशंकरजी ने बताया कि संकीर्तन करनेसे पहले अध्यात्मकी तरफ मेरा रुझान बढता गया। अन्तत: गुजरातके 'सूरत' शहरमें 'जन्माष्टमी-उत्सव' में दीक्षा लेनेका मैंने मन उन्हें दो काली छायाकी तरह पुरुष दिखायी दिये, जो उन्हें पकड़ने आ रहे थे, उसीसे डरकर उन्होंने मुझे भजन गानेके बनाया। सूरत यहाँसे दूर होनेकी वजहसे परिवारके लोग अकेले भेजनेको राजी नहीं थे। तभी मुझे ज्ञात हुआ कि लिये कहा। परंतु मैंने भी दैवयोगसे भजन न गाकर रामनाम-यहाँके कुछ व्यापारी बम्बई होकर सूरत कपड़ा खरीदने संकीर्तन चालू कर दिया। उसके पश्चात् उनके सूक्ष्म शरीरको जानेवाले हैं। उनमें एक श्रीशिवशंकरजीसे मेरा पहलेसे ही उन दो यमदूतोंने यमपाशमें बाँध लिया और उन्हें कई मार्गींसे, परिचय था। अत: मैं भी उन लोगोंके साथ हो लिया। बड़ी ही तेज गतिसे ले जाने लगे। उन्होंने बताया कि कभी मार्गमें लम्बी सुरंग आती थी, कभी खूब गर्म हवा लगती थी, भादोंका महीना था, बम्बईमें रुक-रुककर सारे दिन बारिश होती रही और उसीमें हम चारों लोग मार्केटिंग करते कभी ठंडक और कभी पानीके फौळारे मिलते थे। अजीब तरहके फुल-पौधे उन्होंने देखे, कई फूल तो इंसान जितने रहे, जिनमें शिवशंकरजी के चाचा मोहनजी भी थे। उनके जीजाजी बम्बईमें ही रहते थे। उस दिन रात्रिको उनके यहाँ लम्बे थे, रास्तेमें पितृलोक भी उन्होंने देखा। तभी उन्हें एक भोजनकी व्यवस्था थी। भोजन करनेके पश्चात् मैं और दिव्य पुरुष सफेद वस्त्र पहने हुए मार्गमें मिले। उन्होंने उन शिवशंकरजी एक अलग कमरेमें विश्राम करने लगे। यमदूतोंको रोककर खूब डाँटा और कहा कि अन्तिम समयमें शिवशंकरजीको दमेकी शिकायत थी और सारे दिन बारिशमें हरि-कीर्तन करनेवालेको लानेका काम विष्णुद्तोंका था, भींगनेके कारण रात्रिमें उनको साँस लेनेमें तकलीफ होने तुमलोग वहाँ कैसे पहुँच गये? फिर उस दिव्य पुरुषने लगी। बेचैनीमें वे मुझसे एक भजन गानेका आग्रह करने शिवशंकरजीसे कुछ मॉॅंगनेको कहा, तब शिवशंकरजीने कहा कि मुझे कुछ नहीं चाहिये, दिव्य पुरुषने कहा कि आनन्द तो लगे। उनकी स्थिति विकट जान मैंने रामनाम-संकीर्तन चालू आपको चाहिये न, तब शिवशंकरजी ने कहा—'हाँ, आनन्द कर दिया। शिवशंकरजी संकीर्तन करते हुए गिर पड़े। मैंने तो चाहिये।' फिर उसने कहा कि आप चाहें तो मेरे साथ फौरन सबको बुलाया और उन्हें अस्पताल ले गया। उन्हें दिव्य लोकोंमें चल सकते हैं या वापस भी जा सकते हैं। तब दिलका दौरा पडा था, अत: आई.सी.यू. में तूरंत भरती कराया शिवशंकरजीको अपने परिवारका ध्यान आया और उन्होंने गया। करीब ४० मिनटके बाद डॉक्टरने आकर हमें बताया उस दिव्य पुरुषसे कहा कि पुत्रोंकी शिक्षा-दीक्षा अभी बाकी कि 'ये मेरे जीवनकी पहली ऐसी घटना है, जिसमें मरा हुआ है, अतः मुझे वापस ही भेज दीजिये। तब उसने तथास्तु व्यक्ति जिन्दा हो गया। जब आप लोग उन्हें लेकर आये थे कहते हुए उन्हें सुला दिया और जब आँखें खुलीं तो आई.सी.यू. में ऑपरेशन-टेबलपर अपने आपको रामनाम-संकीर्तन करते तो उनकी हृदय-गति रुक चुकी थी। जितने प्रयास हो सकते थे, सब किये; पर सब विफल हो गये। जब हमलोग मरीजकी हए पाया। मृत्युके पश्चात् कागजी कार्रवाई शुरू करनेवाले ही थे कि तब मैंने उन्हें बताया कि रामनामके कीर्तनके फलस्वरूप देखा मरीज रामनाम-संकीर्तन कर रहा है और उसकी हृदय-आपकी अकाल-मृत्यु टल गयी और फिरसे जीवन प्राप्त गति फिरसे सामान्य हो गयी है।' हुआ है। मेरा रोम-रोम आज भी उस घटनाको याद करके उन्हें जीवनदान मिलना हमारे लिये अपार हर्षका विषय सिहर जाता है। शिवशंकरजी वर्तमानमें करीब ६० वर्षके हैं और वे सपरिवार सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। था। सुबहतक उनको अच्छी तरहसे होश आ गया था। मुझसे अत्मिर्धिकः अपनि Bull Love by Aving हो के क्रिकेट हो के क्रिकेट हो कि कि अपने Hove by Aving हो के अपने अपने कि

पढ़ो, समझो और करो बाद जब मैंने जमीनके मालिकको कथित पाँच सौ रुपया (१)

'रहिमन हाय गरीब की' देना चाहा तो उन्होंने कहा कि पीछेवाली पूरी जमीन (जिसमें परमपिता परमात्माके दरबारमें देर है किंतु अँधेर नहीं। घेरेके अन्दर ली गयी जमीन भी शामिल थी) एक

पण्डितजीको बेच दी जा चुकी है। अब तो मेरे पैरों-देरका भी भान केवल उसीको होता है, जिसे ईश्वरके

विधानपर भरोसा नहीं है, अन्यथा वहाँ सभी भले-बुरे तलेकी जमीन खिसकने लगी, लेकिन तत्काल मुझे एक उपाय सूझा कि पण्डितजीसे ही बातकर क्यों न उन्हींसे कर्मोंका फल उचित समयपर, उचित मात्रामें एवं उचित अपने नाम रजिस्ट्री करा ली जाय। बात बन गयी और

तरीकेसे ही मिलता है। वहाँ पक्षपातकी तो लेशमात्र भी गुंजाइश नहीं है। नीचे मैं अपने जीवनकी एक सच्ची, पर

अति विचित्र घटनाका वर्णन करने जा रहा हूँ। यह घटना

जिस शहर एवं मुहल्लेसे सम्बन्धित है, वहाँ का बच्चा-बच्चा हमारे कथनका साक्षी है।

बात सन् १९७२ ई० की है, मैंने सरकारसे ऋण लेकर बिहारके बक्सर शहरके सिविल लाइन मुहल्लेमें दो कमरेका एक छोटा-सा घर बनवाया था। मैं उस समय

पटना सचिवालयके कृषि विभागमें कार्यरत था। बक्सरमें घर बनवानेका मेरा एकमात्र उद्देश्य अपने पूज्य माता-पिता (जो अब इस संसारमें नहीं रहे)-के आदेशका

होगी। उन्होंने कहा कि मैं शाकलदीपी पण्डित हूँ और मारण-मन्त्रमें दक्ष भी हूँ, यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो अनुपालन ही था। मैं बचपनसे ही उन लोगोंकी हर इच्छाको आदेश ही माना करता था, जैसा कि मेरे स्वर्गीय दादाजीने मुझे सिखाया था। उन लोगोंकी हार्दिक इच्छा थी कि मैंने साफ शब्दोंमें कह दिया कि यदि मैं झुठ बोलता हुँगा तभी आपका शाप मुझपर लग सकता है, अन्यथा मुझे

अपने जीवनके अन्तिम कालमें हम लोग गंगातटपर वास करें। घर बन जानेके बाद जब मैं उसके चारों ओर

बात यह आयी कि यदि पीछेमें थोड़ी-सी जमीन और ले लिया होता तो पीछेवाली गलीसे होकर बाहर निकलनेका एक और रास्ता मिल जाता, जिससे होकर जानेसे गंगातटकी

दूरी में लगभग २०० मीटरकी कमी आ जाती। इसी बातको ध्यानमें रखते हुए मैंने जमीनके मालिकसे बातकर उस अतिरिक्त टुकड़ेको भी अपनी चहारदीवारीके अन्दर ले

चहारदीवारी बनवा रहा था तो एकाएक मेरे दिमागमें एक

लिया। हम दोनोंमें यह तय हुआ कि मात्र पाँच सौ रुपयेमें

पूरा मुहल्ला सन्न रह गया।

हुआ उलटा ही। मुझ गरीबकी हाय भगवान्से न सही गयी—'रहिमन हाय गरीब की हिर सों सही न जाय' की उक्ति सार्थक हुई। मात्र तीन दिनोंकेअन्दर उनके एकमात्र कमाऊ पुत्रको दिलका दौरा पड़ा और वह देखते-ही-

पण्डितजी मेरी बातसे सहमत हो गये। मैंने तुरंत उन्हें

मॉॅंगने लगे। मैंने कहा कि आप तो रजिस्ट्री करनेके पहले

ही रुपया पा चुके हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि इस बातका

कौन गवाह है कि आप जमीनकी कीमत दे चुके हैं ? मैंने

कहा कि आप स्वयं लिख चुके हैं कि कीमत पानेके बाद मैं रजिस्ट्री कर रहा हूँ। इसपर उन्होंने कहा कि वह सब मैं

नहीं जानता, आपको मुझे जमीनकी कीमत पुन: चुकानी

आपका यह छोटा बच्चा एक सप्ताहके बाद नहीं दीखेगा।

अब पण्डितजीको लोभ हो गया और तुरंत फिर पैसा

रुपया देकर उस जमीनको अपने नाम लिखवा लिया।

परमपिता परमात्माके विधानपर पूरा भरोसा है। आप मेरा कुछ भी बिगाड नहीं सकते। उन्होंने मुझे डराते हुए कहा कि आजसे मैं पूजा आरम्भ कर रहा हूँ। पण्डितजीने मेरा अनिष्ट करनेके लिये प्रयास तो बहुत किया, परंतु मैं निरपराध था, भगवान्के सहारे था, इसलिये

िभाग ९४

देखते भगवान्को प्यारा हो गया। इस घटना को देखकर इस घटनासे दो सीखें और मिलती हैं। पहली यह

उस टुकड़ेको भी मेरे नाम रजिस्ट्री कर दिया जायगा। उपर्युक्त तय हुई शर्तके अनुसार लगभग दो सप्ताहके

संख्या ४] पढ़ो, समझ	ो और करो ४७
<u> </u>	
कि 'जैसी करनी वैसी भरनी।' और दूसरी—	जैसेके मन्दिरमें मैंने चोरी की। ऐसा कहकर चोरने
'जाको राखे साइयाँ, मार सके न कोय।	पट्टणीजीके पाँवमें सब गहने रख दिये। पट्टणीजीने
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥'	कहा—तूने साफ हृदयसे सच्ची बात बता दी, इसलिये
—आर० एन० लाल	अब तू पापमुक्त हो गया। ले तिजोरीकी चाभी और
(२)	जहाँसे गहने लिये थे, वहाँ रख दे। ऐसे थे सर दीवान
चोरके प्रति भी सद्भावना	प्रभाशंकर पट्टणीजी, जिन्होंने चोरके प्रति भी सद्भावना
गुजरातके सौराष्ट्र प्रान्तमें भावनगर नामका एक	रखी और अपने जीवनमें भी अपनी कविता चरितार्थ
बड़ा शहर है, जो साहित्य–संगीत आदि ललित कलाओंका	की—'उघाड़ी राखजो बारींंःः।' —रतिभाई पुरोहित
संस्कारी शहर माना जाता है। यहाँ सौराष्ट्रका प्रथम	(\$)
कॉलेज शामलदास कॉलेज बना था, जिस कॉलेजमें	'अतिथिदेवो भव'
हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजीने भी अभ्यास किया है।	बात विगत वर्ष २६ जनवरीकी है। मेरे दामाद
यह भावनगर आजादीके पहले राज्य स्टेट था और	अपने परिवारके साथ सर्दियोंकी छुट्टियोंमें दिल्ली घूमने
कृष्णकुमारजी उसके महाराजा थे। कृष्णकुमारजी बड़े	गये थे। पाँच-छः दिन बाद उन्होंने आगरा घूमनेका
प्रतापी और प्रजावत्सल महाराजा थे। वे प्रजाके सुख-	कार्यक्रम बनाया। वे अपनी गाड़ी ले गये और उसीसे
दु:ख स्वयं देखते, सुलझाते थे। उनकी प्रजामें बहुत बड़ी	सुबह ९-१० बजेके लगभग आगराके लिये निकल गये।
चाहत थी। सर प्रभाशंकर पट्टणीजी उनके दीवान थे।	वे आगराके लिये एक्सप्रेस रोडसे जा ही रहे थे कि
वे आम लोगोंमें बहुत प्रिय थे और 'वज्रादिप कठोरानि	नौझील नामक स्थानसे लगभग ३० कि०मी० आगे एक
मृदूनि कुसुमादिप थे। वे किव भी थे। उन्होंने	पुलियाके पास जानेपर अचानक गाड़ी रुक गयी। गाड़ीमें
गुजरातीमें कविता भी लिखी है— उघाड़ी राखजो	ऐसी खराबी आ गयी, जो उनकी समझमें नहीं आ रही
बारी'''''यानी अपने हृदयकी खिड़की खोलकर रखना।	थी। उसी समय वहाँसे पुलिस पैट्रोलिंगकी गाड़ी भी
एक बार दीवान सर प्रभाशंकर पट्टणीजी राज्यके	निकल रही थी। उन्होंने वहाँ गाड़ी खड़े होनेका कारण
कामके लिये बाहर गये हुए थे। उनके महलमेंसे	पूछा। जब उन्हें बताया गया कि गाड़ी खराब हो गयी
गहनोंकी चोरी हो गयी। पुलिस अधिकारीने जाँच की	है तो उन्होंने एक मैकेनिकका फोन नम्बर उन्हें दिया।
और महलके पुराने कर्मचारीको पकड़कर जेल में बन्द	फोन करनेपर मैकेनिकने कहा कि वहाँ पहुँचनेमें डेढ़-
कर दिया। चोर कर्मचारीकी पत्नी पट्टणीजीके पास	दो घण्टे लग जायँगे। परंतु वह दो घण्टे बाद भी नहीं
आकर, पाँव पकड़कर रोने लगी। साब! मेरे पतिको	पहुँचा, ऐसेमें उनकी बेचैनी बढ़ने लगी। उसी समय वहाँ
पुलिस अधिकारी पकड़कर ले गये, मैं आपके पाँव	एक रोड सुरक्षा गार्ड भी गस्त करता आ पहुँचा। जब
पकड़ती हूँ। आप उन्हें छुड़वा दीजिये।	उसे भी गाड़ी खराब होनेके बारेमें बताया तो उसने एक
पट्टणीजीने एक पत्र लिखकर अधिकारीको चोरके	दूसरे मैकेनिकका नम्बर दिया। जब उस मैकेनिकको
साथ बुलाया। पट्टणीजीने चोरको छोड़ देनेका हुकुम	फोन किया गया तो वह क्रेनसहित लगभग आधे घण्टे
दिया। पट्टणीजीने कहा—इसको छोड़ दो, यह मेरा	बाद पहुँच गया और गाड़ीको लेकर वापस नौझीलकी
पुराना विश्वासी नौकर है, यह कभी चोरी नहीं करेगा।	ओर चल पड़ा। वहाँपर गाड़ी खोलनेपर मैकेनिकने
अधिकारीको आश्चर्य हुआ, लेकिन पट्टणीजीके हुकुमसे	बताया कि इसमें जो सामान पड़ेगा, वह हमारे पास नहीं
चोरको छोड़ दिया। चोर पट्टणीजीके पाँवमें पड़कर	है। कम्पनीसे ही पूछकर मँगाना पड़ेगा। कम्पनीसे
गिड़गिड़ाकर बोला—साब! मुझे क्षमा करें। आप ईश्वर-	पूछनेपर पता चलता कि इस गाड़ीका सामान दिल्ली या

***************************** ले गया। सभी जगह बडे प्रेमके साथ दर्शन करवाये और आगरामें ही मिल सकता है। अबतक अँधेरा भी बहुत हो चुका था, नयी जगह मन्दिरोंके बारेमें जानकारी दी। अन्तमें प्रेममन्दिरके दर्शन थी, अब कहाँ ठहरेंगे। क्या किया जाय, इसी उहापोहमें करवाये। दर्शन करते-करते शामके लगभग आठ बज थे कि उसी समय वर्कशापके मालिक श्रीसद्दामजी भी गये। उनके घरसे भी फोन आ गया कि अब बहुत अँधेरा आ गये। उन्हें जब सारी बात मालूम हुई तो उन्होंने कहा हो गया है, वापस आ जाओ। कि घबड़ानेकी कोई जरूरत नहीं है, मैं आपके ठहरनेका लगभग साढ़े नौ बजे सबलोग वापस घर पहुँचे। इन्तज़ाम एक अच्छे परिवारमें कर देता हूँ। उसने अपने दूसरे दिन जब वे वर्कशाप पहुँचे तो मैकेनिकने कहा कि एक मित्र पाठकजी, जिनकी ट्रर एण्ड ट्रैवेल एजेन्सी भी अभीतक गाडी पूर्णरूपसे ठीक नहीं हुई है। अभी दो-है तथा उस क्षेत्रके नामी गिरामी व्यक्ति भी हैं, को फोन तीन घण्टे लग जायँगे। लगभग एक बजे गाडी ठीक हुई, किया और उन्हें सारी परिस्थितिसे अवगत करवा दिया। अब हमें वापस दिल्लीको प्रस्थान करना था। वर्कशापके थोडी ही देर बाद श्रीपाठकजी गाडी लेकर आये और मालिकने इतनी आत्मीयता दिखायी कि उन्होंने वही पैसे उन्हें अपने साथ अपने घर ले गये। जैसा कि दामादने लिये, जो सामान खरीदनेके लिये लगे थे। साथ ही देरीके बताया कि हम बहुत डरे हुए थे। परंतु जब हम उनके लिये क्षमा-याचना भी की। जहाँ उन्हें ठहराया गया था, घर पहुँचे तो उनके घरके सभी सदस्य बड़ी प्रसन्नताके उन्होंने भी किसी प्रकारके पैसे नहीं लिये। वृन्दावन साथ हमसे मिले तथा सभीका परिचय भी कराया। हमने घुमानेके पैसे उन्हें जबरदस्ती दिये। उनकी आत्मीयता भी अपना परिचय उन्हें दिया। हमें हिमाचल प्रदेशका और प्रेमभावके आगे वे नतमस्तक हो गये। जैसा कि सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और कहा कि आप नि:संकोच दामादने बताया कि जब हम उनसे विदा हुए तो उन्होंने इसे अपना ही घर समझकर आनन्दपूर्वक रहें। उन्होंने हमें कुछ-न-कुछ उपहार भी दिये तथा विदा होते समय बहुत ही अच्छा आदर-सत्कार किया। ऐसे मिले कि हम बहुत पुराने परिचित बिछड़ रहे हों। दूसरे दिन वर्कशापके मालिकने मैकेनिकको गाडीका जैसा हम उस राज्यके बारेमें सुनते और अखबारोंमें सामान लानेके लिये दिल्ली भेज दिया। उस दिन रविवार पढ़ते रहते हैं, ठीक उसके विपरीत ही हमें दोनों था, मार्केट बन्द था, फिर भी मैकेनिकने जैसे-तैसे कुछ (वर्कशापवाले एवं पाठकजीके परिवारवाले) मिले। दुकानोंपर उस सामानके बारेमें पूछा। वहाँ वह सामान ऐसी मेहमाननवाजी—ऐसा आतिथ्य-सत्कार आज बहुत नहीं मिला। उसके बाद वह मैकेनिक गाजियाबाद गया, कम देखने-सुननेको मिलता है। आज भी वे लोग वहाँपर भी कई दुकानोंपर पूछनेके बाद एक दुकानदारने फोनपर आपसमें बात करते रहते हैं। वर्कशापका पुरानी गाड़ीसे वह सामान निकालकर उस मैकेनिकको मालिक भी कई बार गाड़ीके बारेमें पूछता रहता है। दे दिया। ये सारी बातें मैकेनिकने उन्हें तब बतायीं, जब बेटीने बताया कि मैं कई बार सोचती थी कि

था, माकट बन्द था, फिर भा मकानकन जस-तस कुछ दुकानोंपर उस सामानके बारेमें पूछा। वहाँ वह सामान नहीं मिला। उसके बाद वह मैकेनिक गाजियाबाद गया, वहाँपर भी कई दुकानोंपर पूछनेके बाद एक दुकानदारने पुरानी गाड़ीसे वह सामान निकालकर उस मैकेनिकको दे दिया। ये सारी बातें मैकेनिकने उन्हें तब बतायीं, जब वे गाड़ी लेने वर्कशापपर गये।

उधर जिस घरमें हम ठहरे थे, उन्होंने हमें कहा कि जबतक आपकी गाड़ी ठीक होती है, हम आपको वृन्दावन घुमा लाते हैं। ट्रैवेल एजेंसी होनेके कारण उनके पास १५-२० गाड़ियाँ थीं। उन्होंने अपना भानजा हमारे साथ भेजा, जो हमें सबसे पहले बरसाना राधाजीके मन्दिरमें ले गया। उसके बाद गोवर्धन और

मुख्य-मुख्य मन्दिरोंके साथ बाँकेबिहारीके मन्दिरमें भी

घटनाके बारेमें जब हम सोचते हैं तो आँखोंमें आँसू आ जाते हैं और सोचती हूँ कि बाँकेबिहारीजीको छोड़कर हम आगरा जा रहे थे। बाँकेबिहारीजीने ही हमारा रास्ता इस बहानेसे अपनी ओर मोड़कर हमें अपने धाम वृन्दावनमें बुला लिया और हम वृन्दावनकी पावनभूमि

वृन्दावन जाना है, पर कार्यक्रम नहीं बनता था। परंतु इस

भाग ९४

एवं सभी मन्दिरोंके दर्शनकर कृतार्थ हो सके। —लायकराम वासिष्ट संख्या ४] मनन करने योग्य मनन करने योग्य भगवद्-विश्वास विरक्त सन्त, परम पूज्य पं० श्रीशिवरामकिंकर में तीन दिनसे भूखा हूँ। मैंने तुम्हारी पूजा ग्रहण नहीं की योगत्रयानन्दजी महाराज शास्त्रोंके उद्भट विद्वान् थे। है, क्योंकि मेरा परम भक्त पं० शिवरामकिंकर बराहनगरमें रहता है, वह तीन दिनसे उपवास कर रहा है। उसके उनका पाण्डित्य अप्रतिम था। वे आत्मप्रकाशनसे सर्वथा दूर रहते थे । एक समयकी बात है, अर्थाभावके कारण पास अन्नादि खरीदनेके लिये रुपये नहीं हैं। तुम उसको पं० श्रीशिवरामिकंकरजीके घर तीन दिनोंतक चूल्हा नहीं तारसे शीघ्र कुछ रुपये भेज दो। उसके भोजन करनेके जला। सारा परिवार भूखसे व्याकुल हो रहा था। इसपर बाद ही मैं भोजन करूँगा। अतः मैं भगवान् शिवजीकी आज्ञासे ये रुपये भेज रहा हूँ।' भी अध्यापनकार्य बन्द नहीं हुआ और विद्यार्थी अध्ययनके लिये आते रहे। पं० श्रीशिवरामिकंकरजी भी आनन्द और इस अद्भुत घटनाको पढ़कर नरेन्द्रदत्तको महान् आश्चर्य हुआ। शिवजीकी कृपाका अद्भुत चमत्कार देखकर उनकी उत्साहके साथ विद्यार्थियोंको पढ़ाते, शास्त्रोंकी विस्तृत व्याख्या करते और ज्ञान-चर्चामें मस्त रहते। किसीको आँखोंसे भी प्रेम-नीर प्रवाहित होने लगा। वे रूँधे हुए जरा भी भान न हुआ कि पण्डितजी परिवारसहित तीन गलेसे बोले—'बाबा! मैं भी तो आपका ही शिष्य हूँ। दिनसे निराहार हैं, क्योंकि उनके चेहरेपर विषाद और आपने जब तीन दिनसे कुछ भी भोजन नहीं किया तो मुझे क्यों नहीं बतलाया। मैं आपका सब प्रबन्ध कर देता। आप उदासीनताकी छायातक न थी। आज तीसरा दिन था। सदाकी भाँति आज भी भूखे पेट पढाते रहे और मैं पढता रहा, यह तो महान् पण्डितजी विद्यार्थियोंको पढानेमें व्यस्त हो गये। उन्हीं अपराध हो गया। इस अपराधका तो मुझे बड़ा भारी दण्ड छात्रोंमें नरेन्द्रदत्त भी थे। इसी समय डाकिया एक तार मिलना चाहिये। मैं आपका दास हूँ, आपकी सन्तान हूँ लेकर आया, जो पण्डितजीके नामसे था। पण्डितजीने एवं मुझपर आपका अहैतुक स्नेह है, फिर आपने मुझसे तारको खोला और उसे पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते उनकी गुप्त क्यों रखी?' ऐसा कहते बात आँखोंसे अश्रुधारा बह चली। वे बडी देरतक उस तारको हुए वे गुरुजीके चरणोंपर गिर पड़े और फुट-फुटकर मस्तकसे लगाये रहे। रोने लगे। यह अनोखा दुश्य देखकर नरेन्द्रदत्तने कौतुहलपूर्वक नरेन्द्रदत्तके प्रेमको देखकर पं० श्रीशिवरामकिंकरजी गद्गद हो गये। उन्होंने नरेन्द्रदत्तको गले लगाकर पूछा—'बाबा! सामान्य कारणसे हिमालय नहीं हिला करता। आज मैं आपकी विचित्र दशा देख रहा हूँ, जो कहा—'नरेन्द्र! घबराओ मत। जब हमारे पिता विद्यमान आपकी आँखोंसे अश्रुधारा बह रही है और आप नित्य हैं, तब हम अपने पुत्रोंसे क्यों याचना करें? हमारे प्रफुल्लित रहनेवाले धीर पुरुष होते हुए भी शोकाकुल परम पिता, परम सुहृद्, सर्वज्ञ, भगवान् शंकरको हमारी दिखायी दे रहे हैं, मुझे आश्चर्य है। आपको इसका सबसे अधिक चिन्ता है। हम लोगोंको भोले बालककी रहस्य समझाना ही होगा।' तरह सदैव उनके आश्रित होकर निर्भय एवं निश्चिन्त पण्डितजीने तार नरेन्द्रदत्तके हाथमें दे दिया। वह रहना चाहिये। जब वे सर्वज्ञ सदैव सर्वत्र विद्यमान काशीसे आया था। किसी अपरिचित शिवभक्त जमींदारने हैं, तब फिर हम अपने अभावकी बात और किससे कहें ? उनके रहते हुए किसी दूसरेसे याचना करना दस रुपये तारसे भेजे थे और लिखा कि 'हमारे घरमें शिवमूर्ति स्थापित है। रात्रिमें शिवजीने मुझसे कहा कि उनका अपमान करना है।' Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha



'आचारः परमो धर्माः' आजकल पूरे विश्वमें 'कोरोना' नामक एक नयी

बीमारीका आतंक व्याप्त है। कई देश इस बीमारीसे अत्यधिक त्रस्त हैं। हजारों-लाखोंकी संख्यामें वहाँ

लोग संक्रमित हो गये हैं। इस बीमारीसे प्रतिदिन कितने

ही लोगोंकी मौत भी हो रही है। 'कोरोना' के विषयमें मुख्य बात यह है कि इसका कोई इलाज उपलब्ध नहीं

है तथा यह बीमारी छूतकी है। एक संक्रमित व्यक्तिके

सम्पर्कसे दूसरे लोगोंमें इसका संक्रमण तुरन्त होता है। इसी कारण यह बीमारी जोरसे फैल गयी है। अपने देश भारतमें भी इसका पदार्पण होनेके कारण चिन्ता

होनी स्वाभाविक है। अपने प्रधानमन्त्री श्रीमोदीजीने भी देशकी जनताको

बचानेका सावधानीपूर्वक अथक प्रयास किया, पूरे देशमें लॉकडाउन कर दिया तथा देशवासियोंको बीमारीसे बचनेके उपाय सुझाये।

इस बीमारीसे बचनेके सर्वसम्मत उपाय हैं—किसीको छआ न जाये, किसीसे हाथ नहीं मिलाया जाय, हाथको बार-बार धोया जाये, किसीका जूठा नहीं खाया जाय।

बाहरसे आया हुआ व्यक्ति घरके अन्दर हाथ-पैर धोकर ही प्रवेश करे। पाद-त्राण (जुते आदि) घर अथवा कमरेमें न लाये जायँ, कारण इससे इंफैक्शन फैल सकता है।

भारतीय-संस्कृति एवं सनातन-धर्ममें अपने ऋषि-महर्षियोंने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञासे ये बातें पहले ही बता दी थीं। इसीलिये जहाँ निषिद्धाचार होता है ऐसे देशोंमें जानेका भी शास्त्रोंमें निषेध किया गया है। अपने शास्त्र

कहते हैं—'आचार: परमो धर्मा:', आचार-विचार हमारा

प्रधान धर्म है। आचारका मुख्य अंग है शौचाचार। शौचाचारका तात्पर्य है कि हम स्वयंको निरन्तर पवित्र रखें अर्थात् अपने हाथ धोनेके बाद भोजन करें, कोई भी

शुभ कार्य पूजा-पाठ आदि हाथ धोकर ही करें। हाथ

झुठा होनेपर उसे तत्काल धो लें। गले मिलने एवं हाथ

मिलानेकी परम्परा पाश्चात्य देशोंसे हमलोगोंने सीखी। अपनी संस्कृति है—दुरसे नमस्कार, प्रणाम, जै रामजी,

जै गोपाल आदिके द्वारा दूसरोंका अभिवादन किया जाय। जुते आदि घरके दरवाजेके बाहर खोले जायँ, भीतर नहीं ले जायँ। स्पर्शास्पर्शका विचार भी पुरातन समयसे रहा

है, हम बिना कारण एक-दूसरेको छूते नहीं परन्तु आजकी स्थिति एकदम विपरीत है। भारतसे अंग्रेज तो चले गये परन्तु अंग्रेजियत रह गयी। हाथ धोने आदिकी परम्परा

समाप्त हो गयी। एक-दूसरेका जूठा खानेसे कोई परहेज नहीं रहा। पाश्चात्य देशोंकी सभ्यता-संस्कृतिको हमने

आँखें मूँदकर अपना रखा है, इसी कारण 'कोरोना' जैसी महामारीसे बचनेके लिये देशवासियोंको उपाय सुझाये जा रहे हैं और विशेषरूपसे प्रयास किया जा रहा है कि

सब लोग इसका पालन करें परन्तु यदि हम अपनी संस्कृतिके अनुसार आचार-विचारकी शिक्षा देशके बच्चोंको प्रदान करनेकी व्यवस्था करें तथा इसे स्वयं भी दुढतासे अपनायें तो इस प्रकारकी आतंकपर्ण-भयावह परिस्थितियोंके

प्राणिमात्रके कल्याणके लिये परमात्मप्रभुसे यही प्रार्थना है-सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

प्रभावोंसे बच सकेंगे। अपने धर्मके अनुसार संयमित

जीवन-यापन करनेसे लोक-परलोक दोनों सुधरेंगे।

इस विश्वमें सब सुखी हों, सब नीरोगी हों, सब कल्याण-मंगलोंका दर्शन करें, कोई भी लेशमात्र दु:खका भागी न हो।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु। सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥

कठिनाइयोंसे-विपत्तियोंसे सब त्राण पायें, सब मंगलोंका दर्शन करें, सब सद्बुद्धिको प्राप्त हों और सब सर्वदा सर्वत्र आनन्द-लाभ करें। - सम्पादक